



दुखद है, पर देश में किताबों को जलाना कौन सी संस्कृति है

4,7

मोहन भागवत के वार्षिक संबोधन में विरोधाभास

6

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com



अगला निशाना कुंभलगढ़

सरकार को बाईपास कर अंबानी से मिले रूबियो

आशीष रॉय

अमेरिकी विदेश मंत्री मार्को रूबियो 20 से 22 अक्टूबर के दौरान भारत में थे। लेकिन वह दिल्ली नहीं पहुंचे। साफ तौर पर अपने भारतीय समकक्ष विदेश मंत्री एस. जयशंकर या भारत सरकार के किसी भी नुमाइंदे से मुलाकात करना उनकी प्राथमिकता में नहीं था। उनके इस दौर का मुख्य मकसद जामनगर जाकर रिलायंस इंडस्ट्रीज के मुकेश अंबानी से बातचीत करना था, जिनकी तेल रिफाइनरियों का मुख्यालय वहीं है।

स्थापित कूटनीतिक प्रोटोकॉल के बिल्कुल उलट, रूबियो के इस दौर का ऐलान पहले अमेरिकी विदेश विभाग ने किया और भारतीय विदेश मंत्रालय ने काफी बाद में झिझकते हुए इसकी पुष्टि की। दूसरे शब्दों में कहें तो, ट्रंप प्रशासन ने अपने आर्थिक और रणनीतिक हितों को साधने के लिए मोदी सरकार को पूरी तरह दरकिनार करते हुए निजी क्षेत्र के एक बड़े कारोबारी के साथ सीधी बातचीत का ताना-बाना बुना।

मुंबई पहुंचने के बाद ऐतिहासिक ताज महल पैलेस होटल की सीढ़ियों पर खड़े होकर रूबियो ने कहा: ‘आपके पास रिफाइनिंग की भारी क्षमता वाली एक कंपनी (रिलायंस) मौजूद है मुझे लगता है कि मुझे जाकर उनसे बात करनी चाहिए, खासतौर पर तब जब मामला सरकारों के आपसी संबंधों और किसी दूसरे देश के तेल से जुड़ा हो’

अमेरिका ने इस साल जनवरी में वेनेजुएला के राष्ट्रपति निकोलस मादुरो का अपहरण कर उन्हें न्यूयॉर्क ले जाए जाने के बाद से उस देश के तेल उद्योग पर बेहद विवादास्पद दंग से नियंत्रण कर रखा है। रिलायंस इंडस्ट्रीज के पास भारी कच्चे तेल को परिष्कृत करने की विशेषज्ञता है, इसलिए वह बड़ी मात्रा में वेनेजुएला के कच्चे तेल को प्रोसेस करने की अमेरिकी जरूरत को पूरा करने में सक्षम है।

मुकेश अंबानी और उनके बेटे अनंत अंबानी से मुलाकात के बाद रिलायंस ने एक बयान जारी कर कहा: ‘इस यात्रा के दौरान वैश्विक ऊर्जा परिदृश्य और पारंपरिक एवं नए ऊर्जा क्षेत्रों में व्यावसायिक साझेदारी की संभावनाओं पर व्यापक चर्चा हुई।’ रॉयटर्स की एक रिपोर्ट के मुताबिक, ‘अंबानी परिवार ने अमेरिकी कंपनियों के साथ सहयोग की संभावनाओं पर भी अपना नजरिया साझा किया।’ इस साल वेनेजुएला के उत्पादन में हुई क्रमिक बढ़ोतरी के साथ ही रिलायंस पहले से ही उस देश के कच्चे तेल का एक प्रमुख आयातक बन चुका है।

आनन-फानन मुंबई पहुंचे विदेशमंत्री जयशंकर से अपनी मुलाकात में रूबियो ने उम्मीद के मुताबिक भारत पर अमेरिका से ऊर्जा खरीद बढ़ाने का दबाव बनाया। अंबानी के साथ अपनी बातचीत में उन्होंने रिलायंस से वेनेजुएला में अमेरिकी बाजार की जरूरतों को पूरा करने के लिए रिफाइनिंग सुविधाएं स्थापित करने का कथित आग्रह किया। लेकिन इसमें भारत का क्या फायदा? फारस की खाड़ी के संकट के चलते वेनेजुएला से कच्चा तेल खरीदने का

मतलब है भारी-भरकम ढुलाई खर्च उठाना, बशर्ते भारत रिलायंस के रिफाइनिंग सहयोग के बदले रियायतों पर मोलभाव न कर ले।

जापान के एनएचके के मुताबिक, रूबियो ने मुंबई में मीडिया से यह भी कहा कि अगला क्वाड शिखर सम्मेलन अगले महीने मनीला में होगा। ट्रंप की बेरुखी के चलते अमेरिका, जापान, भारत और ऑस्ट्रेलिया का यह क्वाड गठबंधन पिछले 22 महीनों से निष्प्रभावी पड़ा है। चारों देशों के शासनाध्यक्षों की बैठक पिछले साल भारत में होनी थी, लेकिन ट्रंप को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। नवंबर में इस बैठक का यह अचानक और मनमाना आयोजन चीन के अपने आगामी दौर से पहले उस पर दबाव बनाने की एक कमजोर कवायद भर है, लेकिन बीजिंग के इस किस्म की नैटवर्क के झांसे में आने के आसार नहीं हैं।

रूबियो ने उद्योगपति गौतम अडानी से भी मुलाकात की, हालांकि दोनों के बीच हुई बातचीत का कोई ब्योरा सामने नहीं आया है। उनकी यह मुलाकात अमेरिका में विपक्षी डेमोक्रेट्स को बिल्कुल रास नहीं आएगी, जिन्होंने अमेरिकी न्याय विभाग से यह जवाब मांगा है कि इस साल की शुरुआत में अडानी के खिलाफ लगे भ्रष्टाचार के आरोप कैसे और क्यों हटा लिए गए। अमेरिका में कानूनी शिकंजे से अडानी के बचने की एक वजह कथित तौर पर अमेरिकी सौर ऊर्जा क्षेत्र में 10 अरब डॉलर के निवेश का उनका संकल्प रहा है।

जंतर-मंतर पर प्रदर्शनकारियों के खिलाफ भारत सरकार के कड़े एक्शन पर जब पत्रकारों ने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग (ओएचसीएचआर) के प्रतिवेदकों की तीखी आपत्तियों का हवाला दिया, तो रूबियो ने उन ‘यूनन विशेषज्ञों’ का उपहास उड़ाते हुए कहा कि यह शब्द ही अपने आप में एक ढकोसला है।

ओएचसीएचआर के करीब 25 प्रतिवेदकों के एक समूह ने कहा था, ‘शांतिपूर्ण जमावड़े पर किसी भी तरह की पाबंदी कानूनसम्मत होनी चाहिए, उसका मकसद जायज होना चाहिए, और वह जरूरी व अनुपातिक होनी चाहिए।’

अपने दौर पर रूबियो ने बड़े संरक्षकीय अंदाज में कहा: ‘भारत ने अपने ऊर्जा स्रोतों में विविधता लाने की इच्छा बार-बार जताई है (जो कि अमेरिका या अमेरिका द्वारा रोके गए वेनेजुएलाई उत्पादन से तेल एवं गैस खरीदने का कूटनीतिक संकेत है) मुझे लगता है कि उन्होंने इस दिशा में खासी प्रगति की है, और हमें यह देखकर खुशी हो रही है।’ किसी भी सूरत में, खासकर बढ़ते व्यापार घाटे और कमजोर होते रुपये के दौर में, मॉस्को से मिलने वाले प्रतिस्पर्धी सौदे की तुलना में महंगे कच्चे तेल का विकल्प चुनना भारत के राष्ट्रीय हित में कतई नहीं।

इस साल सितंबर में, अमेरिकी कांग्रेस ने एक ऐसा कानून पारित किया जो अमेरिकी राष्ट्रपति को रूसी कच्चा तेल खरीदने वाले देशों के निर्यात पर अपनी मर्जी से 100 प्रतिशत टैरिफ लगाने का अधिकार देता है। हाल के वर्षों में

खबरों के अनुसार, रूबियो ने रिलायंस से वेनेजुएला में रिफाइनिंग सुविधाएं स्थापित करने का आग्रह किया। लेकिन इसमें भारत का क्या फायदा है?



जामनगर दौर के दौरान, अमेरिकी विदेश मंत्री मार्को रूबियो रिलायंस इंडस्ट्रीज के चेयरमैन मुकेश अंबानी के साथ

युवाओं, पत्रकारों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की 7,000 से अधिक गिरफ्तारियों का हवाला देते हुए उन्होंने कहा, ‘ये कार्रवाइयां शांतिपूर्ण जमावड़े की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की आजादी, व्यक्तिगत सुरक्षा और मानवाधिकारों की रक्षा के अधिकार सहित भारत के बुनियादी अंतरराष्ट्रीय कानूनी दायित्वों का उल्लंघन करती हैं।’

ओएचसीएचआर के विशेषज्ञों ने विभिन्न जगहों, विशेषकर दिल्ली में हुए इस दमन को भारतीय हुकूमत की आजादी, व्यक्तिगत सुरक्षा और मानवाधिकारों की रक्षा के अधिकार सहित भारत के बुनियादी अंतरराष्ट्रीय कानूनी दायित्वों का उल्लंघन करती हैं।

अपने दौर पर रूबियो ने बड़े संरक्षकीय अंदाज में कहा: ‘भारत ने अपने ऊर्जा स्रोतों में विविधता लाने की इच्छा बार-बार जताई है (जो कि अमेरिका या अमेरिका द्वारा रोके गए वेनेजुएलाई उत्पादन से तेल एवं गैस खरीदने का कूटनीतिक संकेत है) मुझे लगता है कि उन्होंने इस दिशा में खासी प्रगति की है, और हमें यह देखकर खुशी हो रही है।’ किसी भी सूरत में, खासकर बढ़ते व्यापार घाटे और कमजोर होते रुपये के दौर में, मॉस्को से मिलने वाले प्रतिस्पर्धी सौदे की तुलना में महंगे कच्चे तेल का विकल्प चुनना भारत के राष्ट्रीय हित में कतई नहीं।

न्यूयॉर्क टाइम्स ने जहां रूबियो के इस दौर को ‘तनावपूर्ण रिश्तों के बीच आर्थिक संबंधों को मजबूत करने’ की

भारत द्वारा रूसी कच्चे तेल की भारी खरीद को देखते हुए, ट्रंप प्रशासन ने इस कानूनी प्रावधान को भारत के गले पर लटकती तलवार की तरह इस्तेमाल किया है, और इसमें कोई दो राय नहीं कि वह मोदी से अपने हक में एकतरफा व्यापार समझौता हासिल करने के लिए इसका पूरा फायदा उठाएगा। हालांकि ट्रंप ने मध्यावधि चुनावों से पहले अंतरराष्ट्रीय कीमतों को थामने के लिए नए कानून को लागू करने पर 60 दिनों की रोक का संकेत दिया है, लेकिन यह खतरा अभी टला नहीं है।

अपने दौर पर रूबियो ने बड़े संरक्षकीय अंदाज में कहा: ‘भारत ने अपने ऊर्जा स्रोतों में विविधता लाने की इच्छा बार-बार जताई है (जो कि अमेरिका या अमेरिका द्वारा रोके गए वेनेजुएलाई उत्पादन से तेल एवं गैस खरीदने का कूटनीतिक संकेत है) मुझे लगता है कि उन्होंने इस दिशा में खासी प्रगति की है, और हमें यह देखकर खुशी हो रही है।’ किसी भी सूरत में, खासकर बढ़ते व्यापार घाटे और कमजोर होते रुपये के दौर में, मॉस्को से मिलने वाले प्रतिस्पर्धी सौदे की तुलना में महंगे कच्चे तेल का विकल्प चुनना भारत के राष्ट्रीय हित में कतई नहीं।

न्यूयॉर्क टाइम्स ने जहां रूबियो के इस दौर को ‘तनावपूर्ण रिश्तों के बीच आर्थिक संबंधों को मजबूत करने’ की

कोशिश के तौर पर पेश किया, वहीं ब्रिटेन से अमेरिकी आजादी के 250 साल पूरे होने के उपलक्ष्य में आयोजित एक स्वागत समारोह में अमेरिकी विदेश मंत्री अपने भाषण में जयशंकर का नाम लेना, उनकी मौजूदगी दर्ज करना या द्विपक्षीय संबंधों का जिक्र करना तक भूल गए।

दूसरी ओर, जयशंकर ने कहा कि उसी दिन रूबियो के साथ हुई उनकी चर्चा ‘बेहद अहम’ थी और उन्होंने ‘भारत-अमेरिका रणनीतिक साझेदारी को आगे बढ़ाने के लिए भारत की निरंतर प्रतिबद्धता’ को दोहराया।

रूबियो-जयशंकर मुलाकात पर अमेरिकी विदेश विभाग के आधिकारिक बयान में कहा गया: ‘विदेश मंत्री ने दोहराया कि अमेरिका के साथ बढ़ता ऊर्जा व्यापार अपनी विशाल उपभोक्ता मांग को पूरा करते हुए भारत की आपूर्ति श्रृंखलाओं में विविधता लाने में परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकता है और उन्होंने अमेरिकी प्रौद्योगिकियों व प्रणालियों की खरीद बढ़ाने की वकालत की।’ यह साफ तौर पर एकतरफा व्यापार समझौते को मनवाने के लिए वाशिंगटन द्वारा की जा रही सख्त सैदेबाजी जैसा सुनाई देता है। भारत के लिए यही बेहतर होगा कि वह दबाव के आगे घुटने न टेके, जैसा कि दूसरे अधिक साहसी देशों ने करके दिखाया है। ■

क्या भारतीय प्रवासी आखिरकार जाग रहे हैं?

अशोक स्वैन

यह बात काफी हद तक सब जानते हैं कि नरेन्द्र मोदी के लगातार विदेश दौरे कूटनीति से कहीं ज्यादा, विदेशों में रहने वाले भारतीयों के बीच बड़े आयोजनों के जरिये अपने समर्थकों को यह यकीन दिलाने के लिए होते हैं कि वे एक बहुत बड़े कद के नेता हैं, जिन्हें पूरी दुनिया पसंद करती है। वर्षों तक, पहले से तयशुदा ये प्रयोजित आयोजन उनके समर्थकों और उनके करीबी मीडिया को वही तमाशा दिखाते रहे, जो

वे चाहते थे। वे एक ऐसे नेता का जय-जयकार करते, जिसके बारे में उनका मानना था कि वह उन्हें दूसरों के सामने डींगें हांकने का मौका देता है।

दूतावासों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में भीड़ का ‘मोदी, मोदी’ के नारे लगाना और विदेशों में रहने वाले संपन्न भारतीयों द्वारा किए गए इस समर्थन-प्रदर्शन को मीडिया द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने का असर यह हुआ कि देश के भीतर भी उनकी छवि और मजबूत हुई। संभव है, हर कोई उनसे इतना प्रभावित न रहा हो, लेकिन

उनके आलोचक समर्थकों की तुलना में मुखर नहीं दिखे। लेकिन अब स्थिति बदलती दिख रही है; यूरोप, उत्तरी अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया की सड़कों पर ‘जंतर-मंतर हर जगह है’ के बैनर तले विरोध-प्रदर्शन हो रहे हैं। वे अपने दोस्तों, रिश्तेदारों और देशवासियों की मांगें ही दोहरा रहे हैं- जवाबदेही, निष्पक्ष चुनाव और असहमति जताने की आजादी की मांग कर रहे हैं। लंदन, न्यूयॉर्क, टोरंटो, सिडनी, बर्लिन, डबलिन, स्टॉकहोम, कोपेनहेगन, द हेग और अन्य शहरों के विरोध प्रदर्शनों में

छात्र, पेशेवर और कार्यकर्ता भारत में कथित तौर पर बड़े पैमाने पर हुई चुनावी गड़बड़ियों और प्रदर्शनकारियों पर हो रहे क्रूर दमन के खिलाफ साथ खड़े दिखे। विदेशों में हो रहे इन विरोध प्रदर्शनों का इनकी संख्या से कहीं ज्यादा महत्व है। 50 लोगों का भी एक साथ आना खामोशी को तोड़ने वाला हो सकता है, बदले की कार्रवाई का डर कम कर सकता है, आपसी रिश्ते बना सकता है और भविष्य में विरोध प्रदर्शनों की राह आसान कर सकता है।

हालांकि, यह कहना भी जल्दबाजी होगी कि प्रवासी भारतीयों ने मोदी से उम्मीद छोड़ दी है। विदेशों में रहने वाले भारतीय धर्म, जाति, वर्ग, पीढ़ी और राजनीतिक अनुभवों के आधार पर विभाजित हैं। कानैंगो का ‘2024 इंडियन अमेरिकन एटीयूड्स सर्वे’ बताता है कि 47 प्रतिशत लोग अब भी मोदी के काम से संतुष्ट हैं। मोहभंग बढ़ रहा है, लेकिन हर जगह एक जैसा नहीं। वैसे भी, अमेरिका में हुआ कोई सर्वे दुनिया भर के प्रवासी भारतीय समुदायों की राय का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। ये विरोध-प्रदर्शन दिखाते हैं कि प्रवासी भारतीय समुदाय के भीतर गंभीर विरोध के लिए जगह मौजूद है, और लोग अब उसका इस्तेमाल करने लगे हैं।

यह जानकारी उस राजनीतिक समझ को भी चुनौती देती है, जिसे मोदी पिछले बारह वर्षों से बढ़ावा देते रहे हैं- कि विदेशों में भारतीयों का दर्जा दुनिया में ‘उनके’ (मोदी के) कद पर निर्भर करता है। ऐसे में, उनकी

तारीफ करना उनके राष्ट्रवाद का सबूत बन जाता है, और आलोचना करना मातृभूमि का अपमान। भले ही ये लोग उन देशों की बहुलवादी व्यवस्था का लाभ उठाते हैं, जहां वे बसे हैं, या जहां वे रहते हैं वहां भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा की मांग करते हैं, फिर भी विदेशों में रहने वाले तमाम भारतीय भारत में ‘बहुसंख्यकवाद’ के साथ हैं। मोदी के भारत में अल्पसंख्यक निशाना बनाए जाएं, इससे उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। लेकिन, अब विदेशों में रहने वाले भारतीयों का एक ऐसा समूह सामने आया है, जो भारत में सभी नागरिकों के लिए समान नागरिकता की पुरजोर मांग करते हुए इस पाखंड को चुनौती दे रहा है।

प्रवासियों की ओर से विरोध इस अक्टूबर में शुरू नहीं हुआ है। 2021 में किसानों के आंदोलन के समर्थन में सिख संगठनों ने अहम भूमिका निभाई थी। जाति-विरोधी समूहों, मुस्लिम संगठनों, धर्मानुरेपक्ष संस्थाओं और छात्र नेटवर्कों ने वर्षों से हिन्दू कट्टरवाद को चुनौती दी है। उनके काम को मान्यता मिलनी चाहिए।

मौजूदा विरोध-प्रदर्शन उन छात्रों के बीच भी असर डाल रहे हैं, जिन्हें घर लौटने पर भर्ती परीक्षाओं की चिंता सता रही है। ऐसे कई लोग जो खुद को ‘राजनीति से दूर’ मानते थे या अब तक राजनीतिक चर्चाओं से बचते रहे हैं, वे भी अब अपने देश में हो रही घटनाओं पर खुलकर बोलने लगे हैं। वे शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर पुलिसिया बर्बरता से नाराज हैं। संभव है इनमें से कई लोग कभी मोदी के प्रशंसक रहे हों, लेकिन अब उन्हें अपनी उस नादानी का एहसास हो रहा है। हालांकि, सोच में आया यह बदलाव अब भी एक प्रक्रिया है, जो जारी है। डर आज भी एक बाधा है, और प्रवासियों के मामले में यह थोड़ा अलग रूप ले लेता है। यही कारण है कि प्रदर्शनकारियों की संख्या आसानी से नहीं बढ़ती। हजारों किलोमीटर दूर रहने वाले लोग अब भी अपने परिवार (नजदीकी या दूर के रिश्तेदारों) या दोस्तों को लेकर, घर जाने में आने वाली दिक्कतों को लेकर, और भारत के साथ अपने रिश्तों को लेकर चिंतित हो सकते हैं।

ओसीआई कार्डधारक अभिनेता इमरान

खान के खिलाफ हाल ही में की गई कार्रवाई

ने इन आशंकाओं को सच साबित कर दिया।

मुंबई में हुए एक विरोध-प्रदर्शन में कथित तौर

पर शामिल होने के बाद, उन्हें भारत छोड़ने का

आदेश थमा दिया गया और उनके ओसीआई

दर्जें पर भी सवाल उठाए। उन्होंने इसे अदालत

में चुनौती दी है, और मामला जिस भी दिशा

में जाए, उन्हें जिस तरह परेशान किया गया

है, उसमें दूसरों के लिए एक संदेश है: ‘वह

असहमति अपने ही देश से आपके लिए खतरा

बन सकती है।’

इसका उल्टा भी सच है: सार्वजनिक

प्रदर्शनों में शामिल होकर लोगों को पता चलता

है कि जो उनकी चिंताएं हैं, दूसरे भी वैसा ही

सोचते हैं। संभव है किसी छात्र की मुलाकात

किसी वकील से हो जाए, किसी पेशेवर को

कोई आयोजक मिल जाए, या जो अब तक

अकेला काम कर रहा था, उसे समुदाय और

साझा उद्देश्यों की अहमियत समझ आ जाए!

एक साथ मिलकर भारतीय संविधान को पढ़ने

से उन्हें एक ऐसा साझा मकसद मिल जाता है,

जो किसी तानाशाह के प्रति उनके व्यक्तिगत

गुस्से से कहीं ज्यादा मजबूत होता है। ये नए

बने रिश्ते और जुड़ाव मौजूदा विरोध-प्रदर्शनों

के खत्म होने के बाद भी कायम रह सकते हैं।

लेकिन इसके लिए लोगों को एकजुट करने

की कोशिशें लगातार जारी रखनी होंगी- भले

ही सोशल मीडिया से इन प्रदर्शनों की तस्वीरें

गायब क्यों न हो जाएं।

विरोध-प्रदर्शन उदाहरणों से भी फैलते

हैं। फ्रांस, इटली, अल्बानिया में प्रदर्शनों के

तात्कालिक कारण अलग-अलग हैं, इसलिए

इन्हें एक बड़े अंतरराष्ट्रीय विद्रोह के रूप में

नहीं देखा जाना चाहिए। फिर भी, जब युवा

एसी संस्थाओं को चुनौती देते हैं जो उनका

बात नहीं सुनतीं, तो उनकी तस्वीरें दूसरों को

भी कदम उठाने को प्रेरित कर सकती हैं। ये

तस्वीरें दिखाती हैं कि हताशा को केवल अपने

तक ही सीमित रखने की ज़रूरत नहीं है, और

यह भी कि किसी ऐसी सरकार का विरोध

करना जो लोगों की बात नहीं सुनती, कोई

राष्ट्र-विरोधी काम नहीं है।

श्रेय पेज 2 पर ▶





राज्य 360°

उत्तराखंड

भाजपा को उलटी पड़ी राज्यपाल पद पर नियुक्ति

रश्मि सहगल

भाजपा के पूर्व राष्ट्रीय महासचिव और पार्टी के अनुसूचित जाति मोर्चा के पूर्व अध्यक्ष दुष्यंत कुमार गौतम ने 19 अक्तूबर को सिक्किम के 19वें राज्यपाल के रूप में शपथ ली। राष्ट्रपति से उनकी नियुक्ति वापस लेने की गुहार लगाई गई थी, जिसे अनसुना कर दिया गया। गौतम का नाम उन वीआईपी चेहरों में शुमार रहा है जिन पर सितंबर 2022 में अंकिता भंडारी पर यौन संबंध के लिए दबाव बनाने का आरोप लगा था।

19 साल की रिसेप्शनिस्ट अंकिता 18 सितंबर की रात वनंत्रा रिसॉर्ट से रहस्यमय तरीके से गायब हो गई थी। कई दिनों बाद उसका शव चिल्ला बैराज से मिला। मुख्य आरोपी पुलकित आर्य (वनंत्रा रिसॉर्ट का मालिक और भाजपा नेता विनोद आर्य का बेटा) मामले में उम्रकैद काट रहा है, लेकिन इसमें पुलकित आर्य के साथ ही विवादों में आए दुष्यंत गौतम की कॉल डिटेल सामाजिक संगठनों की मांग के बावजूद सार्वजनिक नहीं की गई।

चार साल से उत्तराखंड अंकिता को न्याय की मांग पर उबल रहा है। सरकार ने जनवरी 2026 में जांच सीबीआई को सौंपी। अंकिता के बुजुर्ग माता-पिता सोनी देवी और वीरेंद्र सिंह भंडारी न केवल जांच के ठंडे बस्ते में जाने से आहत हैं, बल्कि गौतम को राज्यपाल बनाए जाने से गहरे सदमे में हैं, क्योंकि इस पद पर बैठते ही उन्हें मुकदमों से संवैधानिक छूट मिल गई है।

सोनी देवी ने कहा, ‘जब हमने उनकी नियुक्ति की खबर सुनी, तो पूरी रात सो नहीं सके। हम दिल्ली आए। 14 अक्तूबर को जंतर-मंतर पर बैठे ही थे कि पुलिस धमकाने लगी। पुलिस ने कहा कि अगर नहीं हटे, तो कानून तोड़ने के जुर्म में डेढ़ लाख का जुर्माना ठोका जाएगा। हम गरीब हैं, इतना भारी जुर्माना भरने की हैसियत नहीं, इसलिए हम इंडिया गेट चले गए। वहां कई सामाजिक कार्यकर्ता और राहुल गांधी एवं प्रियंका गांधी सहित कांग्रेस के वरिष्ठ नेता एकजुटता जताने आए।’ हालांकि सोनी देवी ने यह नहीं बताया कि अंकिता की मौत के बाद से ही दोनों माता-पिता खुफिया एजेंसियों की सख्त निगरानी में हैं और उनकी हर हरकत पर

नजर रखी जा रही है।

इंडिया गेट पर उनके इस धरने से – जहां उन्होंने सीबीआई जांच के नतीजे सार्वजनिक न होने पर बेमियादी अनशन की धमकी दी थी– धामी सरकार असहज हो गई। पौड़ी गढ़वाल के पुलिस अधीक्षक सर्वेश पंवार और स्थानीय खुफिया इकाई के उपनिरीक्षक सरदार सिंह को अंकिता के माता-पिता को नई दिल्ली पहुंचने से न रोक पाने के आरोप में निलंबित कर दिया गया।

नेता प्रतिपक्ष के उनसे मिलने के अगले ही दिन दिल्ली पुलिस अंकिता के माता-पिता को वहां से हटाकर ले गई। इसके बाद भाजपा ने पौड़ी गढ़वाल के सांसद अनिल बलूनी (जिन्हें केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह का करीबी माना जाता है) के साथ अंकिता के परिजनों की सीबीआई के दो वरिष्ठ अधिकारियों से मुलाकात की एक तस्वीर जारी की। जाहिर है, सीबीआई को इस फोटो-ऑप को आयोजित करने का निर्देश दिया गया होगा। विधानसभा चुनाव में पांच महीने हैं और देखना यह है कि किन वीआईपी चेहरों को बलि का बकरा बनाया जाता है।

सोनी देवी अपनी लड़ाई जारी रखने के लिए दृढ़ हैं। उन्होंने कहा, ‘मैं हार नहीं मानूंगी। सरकार ज्यादा से ज्यादा हमें जान से मार सकती है। उनके सफेद झूठ को कबूल करने से बेहतर है कि हम मर जाएं।’ वीरेंद्र भंडारी भी उतने ही संकल्पबद्ध हैं। उन्होंने कहा, ‘सीबीआई को जांच जल्द से जल्द पूरी करनी चाहिए। दुष्यंत गौतम और दूसरे आरएसएस नेता अजय कुमार के कॉल रिकॉर्ड सार्वजनिक किए जाने चाहिए। हमने राष्ट्रपति से अपील की थी कि नियुक्ति पत्र पर दस्तखत करने से पहले उनके पिछले रिकॉर्ड की पड़ताल की जाए।’

गौतम की नियुक्ति की खबर से सिक्किम में भी तीखा जनाक्रोश फैल गया। सिक्किम बार काउंसिल ने मुख्यमंत्री प्रेम सिंह तमांग और प्रधानमंत्री मोदी को पत्र भेजकर मांग की कि ‘जब तक अंकिता भंडारी प्रकरण का पूरी तरह निपटारा नहीं होता और राज्यपाल के रूप में नामित व्यक्ति को निर्णायक रूप से बेदाग करार नहीं दे दिया जाता, तब तक इस नियुक्ति को स्थगित रखा जाए।’

सिक्किम के सामाजिक कार्यकर्ता और सिटिजन एक्शन पार्टी के नेता भरत बस्नेत ने कहा कि इतनी विवादित छवि वाले व्यक्ति की नियुक्ति से राज्य खुद को शर्मिंदा महसूस कर रहा है। छात्र संगठन और आम नागरिक रोजाना प्रदर्शन कर रहे हैं। संकल्प है कि जब तक गौतम की राज्यपाल पद से विदाई नहीं हो जाती, आंदोलन जारी रहेगा।

सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर ऑफ इंडिया (कम्युनिस्ट) के सदस्य डॉ. मुकेश सेमवाल का मानना ​​है कि गौतम की नियुक्ति का एकमात्र मकसद उन्हें अनुच्छेद 361 के तहत राज्यपालों को मिलने वाली सभी आपराधिक मुकदमों से पूर्ण छूट का कवच प्रदान करना है। उन्होंने सवाल किया: ‘केन्द्र और उत्तराखंड की राज्य सरकारें चौतरफा आलोचनाओं का सामना कर रही हैं। इसके बावजूद तमाम विरोधों को दरकिनार करते हुए उन्होंने यह नियुक्ति की। गौतम के पास ऐसी कौन सी गोपनीय जानकारी है? इसमें शक नहीं कि गौतम लंबे समय से आरएसएस के निष्ठावान सिपाही हैं, लेकिन सवाल तो यह है कि कानून को अपना काम क्यों नहीं करने दिया गया?’

राजनीतिक गलियारों में एक और चर्चा गर्म है। दलितों की एक प्रभावशाली उपजाति से ताल्लुक रखने वाले और लंबे समय से संघ व भाजपा के संगठनकर्ता रहे गौतम को यह जिम्मेदारी सौंपकर पार्टी उत्तर प्रदेश में अपना जनाधार मजबूत करना चाहती है। जैसा कि एक भाजपा नेता ने चुटकी लेते हुए कहा-अगर सिक्किम के नए राज्यपाल अपना ज्यादा समय यूपी में बिताते नजर आएंग, तो किसी को ताज्जुब नहीं होना चाहिए!

उत्तराखंड में नागरिक समाज, वामपंथी दल और कांग्रेस लगातार ‘जस्टिस फॉर अंकिता’ अभियान की अगुवाई कर रहे हैं। कांग्रेस नेता सूर्यकांत धरस्माना ने कहा, ‘भाजपा और संघ ने गौतम को कानूनी कार्रवाई से छूट देकर राज्य की जनता के जख्मों पर नमक छिड़का है। इससे उनका असली चेहरा बेनकाब हो गया है।’ कांग्रेस उपाध्यक्ष सुजाता पॉल के साथ एक वीडियो साक्षात्कार में अभिनेत्री उर्मिला सनावर ने दावा किया कि उत्तराखंड एसआईटी के पास मौजूद अहम जानकारीयां सीबीआई को नहीं दी



अंकिता भंडारी के माता-पिता ने सीबीआई के वरिष्ठ अधिकारियों से मुलाकात की

क्या भारतीय प्रवासी जाग रहे हैं?

» पेज एक का शेष

प्रवासी समुदाय ने शायद एक अहम सबक सीखा है: शांतिपूर्ण तरीके से संगठित होने और विरोध प्रदर्शन करने में बड़ी ताकत होती है। हिंसा प्रदर्शनकारियों को ही खतरे में डाल सकती है, समर्थक दूर जा सकते हैं, और सरकारों को वे मांगें नजरअंदाज करने का बहाना मिल सकता है, जिनके लिए लोग सड़कों पर उतरे थे। विदेशों में होने वाली आलोचना के प्रति मोदी सरकार की संवेदनशीलता, प्रवासी भारतीयों के प्रदर्शनों को राजनीतिक महत्व देती है। किसान आंदोलन को मिले अंतरराष्ट्रीय समर्थन पर जैसी प्रतिक्रिया आयी, वह इस बात का सबूत है कि वैश्विक राय को लेकर यह कितना संवेदनशील (या असहज) है।

प्रवासी भारतीयों के विरोध-प्रदर्शनों का असर सबसे ज्यादा पश्चिमी विश्वविद्यालयों, छात्र संगठनों, नागरिक समाज और मीडिया में दिखाई देगा। प्रवासी भारतीय, भारत के चुनाव आयोग की चुनावी गड़बड़ियों को सामने लाने में मदद कर सकते हैं, अपने अनुभव साझा कर सकते हैं और इस दावे को चुनौती दे सकते हैं कि मोदी की आलोचना का मतलब भारत का विरोध करना है। वे अंतरराष्ट्रीय पत्रकारों को दूतावास की ब्रीफिंग से इतर अन्य आवाजों से परिचित करा सकते हैं। वे दूसरों को यह समझाने में भी मदद कर सकते हैं कि भारत के भविष्य के लिए चुनावी स्वतंत्रता, अल्पसंख्यकों के अधिकार और अभिव्यक्ति की आज़ादी क्यों मायने रखती है।

पश्चिमी सरकारों का मामला बिल्कुल अलग है। इन प्रदर्शनों से सरकारों की कार्यशैली या उनकी नीतियों में कोई बदलाव नहीं आने वाला, क्योंकि ये नीतियां हथियारों की बिक्री, व्यापार, आर्थिक हितों और चीन से जुड़े कथित खतरों जैसे स्वार्थी समीकरणों से प्रेरित हैं। पश्चिमी सरकारें भले ही लोकतंत्र के प्रति दिखावटी समर्थन जताएं या भारत की संस्थाओं के कमजोर होने पर चिंता जाहिर करें, लेकिन वे इन बातों को मोदी के भारत के साथ अपने व्यापार के आड़े नहीं आने देंगी।

जनता के दबाव से संसद में सवाल तो उठ सकते हैं, लेकिन सरकारें प्राथमिकता तो हमेशा अपने रणनीतिक हितों को ही देंगी। प्रवासी भारतीयों का काम यह है कि वे भारत पर ध्यान केन्द्रित करें, लोकतांत्रिक लामबंदी का समर्थन करें और इस दावे को पूरी ताकत से गलत साबित करें कि ‘मोदी सरकार ही भारत है’। ■

प्रणव चौधरी

आमतौर पर स्नातक और शिक्षक निर्वाचन क्षेत्रों की चार-चार यानी कुल आठ सीटों पर होने वाले चुनाव में इतनी राजनीतिक तपिश और गहमागहमी नहीं दिखा करती थी। जनता दल (यूनाइटेड) के मुकाबले चुनावी मैदान में जन सुराज, कांग्रेस, राजद और वाम दलों की मौजूदगी ही इस आक्रामक चुनाव प्रचार, रोड शो और मीडिया में मंचे घमासान की अकेली वजह नहीं है।

मुख्यमंत्री सम्राट चौधरी और एनडीए के लिए यह चुनाव अहम सियासी अग्नंपरीक्षा हैं, खासतौर पर तब जब इस साल के शुरू में हुए उपचुनावों में प्रशंत किशोर ने बांकीपुर सीट (जिस पर 1995 से भाजपा का कब्जा था)

मुझे इस क्रांति में क्यों नाचना चाहिए

स्वर्णा भटनागर

सरकार ने पूरी ताकत लगाकर हमें जंतर-मंतर जाने से रोक दिया था। इसके दो-एक दिन बाद ही मेरी बहन ने मुझे ‘चलो जंतर मंतर’ नाम का एक वीडियो गेम भेजा, जिसमें जंतर-मंतर पहुंचने की ऐसी ही चुनौती पार करनी थी।

जब आप खुद सड़कों पर पूरे दिन वही सब झेल चुके हों, तो पुलिसिया घेराबंदी तोड़ने का यह डिजिटल अनुभव बेहद गुदगुदाने वाला बन जाता है। सरकार सड़कों पर कंटीले तार बिछा सकती है, पुलिस को बेलगाम छोड़ सकती है, राजधानी को छावनी में तब्दील कर सकती है और अपने बुनियादी लोकतांत्रिक हक के लिए निकले नागरिकों को भगोड़ों की तरह खदेड़ सकती है। मगर कुछ ही दिनों में कोई उसी घेराबंदी पर एक वीडियो गेम तैयार कर देता है, और आप अपनी मेज पर आराम से बैठकर वह सब कर डालते हैं जिसे जमीन पर रोकने के लिए हुकूमत ने अपनी पूरी ताकत झोंक रखी थी।

बाड़, लाठियों, पुलिसिया काफिलों और वदीं के जरिये हुकूमत अपने भारी-भरकम शक्ति-प्रदर्शन करती है; वह यह जताना चाहती है कि सत्ता से टकराना बेहद खौफनाक सौदा है और बगावत करने वालों के पसीने छूट जाने चाहिए। लेकिन हास्य और व्यंग्य सत्ता के इस खोखले दबदबे पर ऐसा कथारा प्रहार करते हैं कि उसका पूरा तमाशा बिखर जाता है।

रूसी दार्शनिक और साहित्यिक आलोचक मिखाइल बाख्तिन ने ‘कार्निवाल’ की अवधारणा को नया आयाम दिया - यानी वे क्षण जब हास्य और उल्लास सत्ता व्यवस्था को सिर के बल खड़ा कर देता है, ताकतवर लोगों को जमीन पर ला पटकता है और अवाम को ऐसी दुनिया का अहसास कराता है जहां वह सत्ता का खुल्लमखुल्ला उपहास उड़ा सकता है।

इन विरोध प्रदर्शनों के नारों में भी सत्ता की भाषा को इसी तरह जमीन पर ला पटकने का खेल चल रहा है। नीट परीक्षा घोटाले पर बने पोस्टर जिन पर लिखा था ‘दो भाई, दोनों बिन पढ़ाई’, या मुख्य चुनाव आयुक्त और उनकी डोर थामने वालों के खिलाफ इसी महीने गूंजा यह नारा-‘एक कचोरी दो चाय, ज्ञानेश कुमार बाय बाय’- ये सब सत्ता के घिसेपिटे तौर-तरीकों को खोंचकर सड़क की चटखरेदार नोकझोंक पर ला खड़ा करते हैं। थाने में बंद होने की तैयारी करने या पुलिस की लाठियां खाने के लिए दिल्ली कूच करने वाली सोशल मीडिया रिल्स के पोंछे भी यही तेवर है। इस पूरे तंज की जान हालात की उस बेबसी में हैं जिसे नौजवान किसी भी सूरत में आखिरि सच मानने से इनकार कर रहे हैं।

एक चुटकुला लोहे की बैरिकेडिंग को नहीं तोड़

सकता और न ही कोई वीडियो गेम दर्ज मुकदमों और गिरफ्तारियों को मिटा सकता है, मगर जब तक यह खिलंदड़ापन कायम है, बैरिकेड खड़ा करने वालों की मंशा कभी पूरी नहीं हो सकती।

अपनी किताबों ‘वेपन्स ऑफ द वीक’ और ‘डोमिनेशन एंड द आर्ट्स ऑफ रेंजिस्टेंस’ में राजनीति विज्ञानी जेम्स सी. स्कॉट ने उन छोटे-मोटे और सहज तौर-तरीकों का अध्ययन किया जिनके सहारे दबे-कुचले तबके अपनी असहमति दर्ज कराते हैं-वह अवज्ञा जो हुक्मरानों की सीधी निगरानी से बचते-बचाते पनपती है। प्रतिरोध के इस अलक्षित रूप को उन्होंने ‘हिडन ट्रॉसक्रिप्ट’ (छुपा हुआ दस्तावेज) कहा था। यह फर्क समझना आज इसलिए जरूरी है, क्योंकि इन प्रदर्शनों में जो कुछ नजर आ रहा है, वह अब रती भर भी छुपा हुआ नहीं है। मिसाल के तौर पर सलमान खान के जुमले ‘सोनम, इट्स डन ब्रो’ का बदला हुआ रूप ही देख लीजिए।



फोटो: नोटी इकोके

आंदोलनकारी नौजवानों के हाथों में पड़कर यह जुमला अक्तूबर के प्रदर्शनों में ‘ज्ञानेश, इट्स डन ब्रो’ के तीखे नारों में बदल जाता है।

इसके बाद गेम्स का नंबर आता है। ‘चलो जंतर मंतर’ के साथ-साथ ‘भाग नेहा भाग’, ‘डिजिटल थपलू’ और ‘डिजी तिरंगा’ जैसे गेम सामने आए हैं, जहां आप अपनी स्क्रीन पर तिरंगा लहरा सकते हैं-बिना किसी गिरफ्तारी के डर के; क्योंकि मुल्क की राजधानी में अब तिरंगा फहराना भी कथित तौर पर एक जुर्म बना दिया गया है।

राजनीतिक आंदोलनों में आमोद-प्रमोद और उल्लास को लेकर अक्सर जिस संशय का माहौल रहता है, उससे एम्मा गोल्डमैन अच्छी तरह वाकिफ थीं। अपनी आत्मकथा ‘लिविंग



सरकार वाहे तो अपने सारे बैरिकेड, लाठियां और वर्दी सामने ले आए; उय युवा प्रदर्शनकारियों ने दिखा दिया है कि उन्हें हिरासत में तो लिया जा सकता है, लेकिन दबाया नहीं जा सकता

और फोन की स्क्रीन से दुनिया को देखने वालों की एक सनक करार देना दरअसल एक किस्म का बौद्धिक आलस है। यह समझ बेहद छिछली है। सच तो यह है कि यह गंभीरता, अगर मैं साफ कहूं, हास्य के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलती है; दोनों एक-दूसरे को काटते नहीं हैं। हम डरे हुए भी हैं और मजाकिया भी। थोड़े थके हुए जरूर हैं, लेकिन कहीं ज्यादा रचनात्मक हैं। और हम मैदान छोड़कर इतनी जल्दी कहीं नहीं जाने वाले।

जब मैंने ‘चलो जंतर मंतर’ खेला, तो मुझे नहीं पता कि मुझे यह इसलिए मजेदार लगा क्योंकि इसने उस कड़वे वाक्ये को हल्का बना दिया, या इसलिए कि इसने मुझे याद दिलाया कि वह अनुभव उन लोगों की पकड़ से बाहर निकल चुका है जो उसे डंडे के जोर पर काबू करना चाहते थे। वह दिन अपमानजनक और हास्यास्पद था, और एक बार फिर, इस बार अपनी स्क्रीन के पिकसल के जरिये, मैंने अपनी शतों पर उस बेतुकेपन का सामना किया।

मैं अब भी जंतर-मंतर पहुंचना चाहती हूं। मुझे यकीन है कि देर-सबेर मैं वहां पहुंच ही जाऊंगी। और तब तक, हम उस बेपरवाह मिजाज के साथ यह खेल खेलते रहेंगे जो कभी किसी सियासी दल के पिछलग्गू नहीं रहे, जिन्होंने कभी खुद को झंडाबरदार नहीं माना, और जिन्होंने कभी

यह सोचा तक नहीं था कि वे अपने दिन राष्ट्रीय ध्वज फहराने या शांति से सड़कों पर चलने जैसे बुनियादी मसलों पर हुकूमत से माथापच्ची करते हुए गुजारेगे। हम एक-दूसरे तक पहुंचने की राह निकालते रहेंगे, तब भी जब यह हुकूमत हमें जनपथ की उस सड़क पर एक साथ खड़े होने से रोकेगी।

हुकूमरान चाहें तो उन लोगों के इशदों को समझने की कोशिश कर सकते हैं जो खौफ में होकर भी मैदान नहीं छोड़ते। या फिर वे उनसे नफरत कर सकते हैं। लेकिन वे उनका क्या करेंगे जो इसलिए सड़कों पर उतर आए हैं क्योंकि इस मुल्क की रगों में कुछ इतना जहरीला भर चुका है कि नौजवान अपने जिंदा और बागी होने के पूरे वजूद के साथ सामने आ खड़े हुए हैं? वे लोग जो लाठीचार्ज रोकने के लिए ‘जन गण मन’ गाने लगते हैं, जो डंडे के जवाब में बांसुरी की तान छेड़ देते हैं, जो सत्ता की आंखों में आंखें डालकर खिलखिलाते हैं क्योंकि बेशक उन्हें थानों में बंद किया जा सकता है, मगर उनकी रूह को कभी गुलाम नहीं बनाया जा सकता।

किसी इंकलाब में थिरकने की यही तो सबसे बड़ी खुबसूरती है। वे चाहे हमारी जिंदगियों पर जैसी हुकूमत चला लें, हम उसे अपने ही ढंग से जिएंगे। ■

रेस कोर्स रोड पर विरासत की क्या बिसात

सेंट्रल विस्टा परियोजना का संदेश स्पष्ट है और यह एक सभ्यतागत भाषा में बात करती है

हरजिंदर

प्रधानमंत्री आवास से कुछ ही मिनट की पैदल दूरी पर बुलंद सौ साल से भी पुरानी एक मस्जिद को छह दिन के भीतर खाली करने का नोटिस 19 अक्तूबर को थमा दिया गया। 7 अक्तूबर को ही वहां की पानी और बिजली काट दी गई थी। भूमि और विकास कार्यालय (एलएंडडीओ) ने रेस कोर्स मस्जिद को ‘अनधर्मिक’ घोषित कर दिया। उसका तर्क है कि मस्जिद सरकारी जमीन पर बनी है। जिस जगह से सौ साल से भी अधिक समय से लोग इबाबत के लिए जाते हैं, उसे अब अवैध निर्माण का दर्जा मिल गया।

हालाँकि सरकारी कागजात अलग ही कहानी बयां करते हैं। जमीयत उलेमा-ए-हिन्द के प्रतिनिधिमंडल की ओर से मोहम्मद हकीमुद्दीन कासमी ने केन्द्रीय अल्पसंख्यक कार्य मंत्री किरेन रिजिजू को ज्ञापन सौंपा है। मस्जिद के ऐतिहासिक होने के प्रमाण दिए गए हैं। मस्जिद नई दिल्ली नगरपालिका परिषद की विरासत सूची में शामिल है। इसका जिक्र 1977 के दिल्ली गजट में भी मिलता है। अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय की संशोधित विरासत सूची में भी मस्जिद दर्ज है। जमीयत ने मांग की है कि जब तक विवाद का कानूनी निपटारा नहीं हो जाता, कोई कार्रवाई न की जाए। खबरों के मुताबिक, रिजिजू ने ‘हर संभव प्रयास’ करने का आश्वासन दिया है।

द हिन्दुस्तान गजट की एक रिपोर्ट में मस्जिद के इमाम मोहम्मद हारुन ने वीडियो बयान में बताया कि वह पिछले छह महीने से दिल्ली वक्फ बोर्ड के सामने मामला उठा रहे थे। लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। बोर्ड ने सिर्फ एनडीएमसी को पत्र लिखकर बंद की गई बुनियादी सुविधाओं का मुद्दा उठाया। पीने का पानी भी खत्म हो चुका है। मस्जिद तक पहुंचने का रास्ता भी बंद कर दिया गया है।

हारुन ने खुद हाईकोर्ट का दरवाजा खटखटाया। अदालत ने उनकी याचिका खारिज कर दी, क्योंकि उनके पास वक्फ बोर्ड की अनुमति नहीं थी। वह 2021 के एक सर्वे का भी हवाला देते हैं। उस सर्वे में मस्जिद को न तो अनधिकृत बताया गया था और न ही अतिक्रमण की श्रेणी में रखा गया था।

फोटो: नोटी इकोके



रेस कोर्स रोड पर स्थित मस्जिद (ऊपर) जिसे ‘अवैध’ घोषित किया गया है

कायाकल्प किया जा रहा है। राष्ट्रीय राजधानी में नए कार्यालयों की जरूरत से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन जिस भव्य नवीनीकरण का वादा किया गया था, उसके नाम पर बड़े पैमाने पर तोड़फोड़ और पुरानी पहचान मिटाने का काम हुआ है। बड़ी संख्या में पेड़ काटे गए हैं। परिचित इमारतों और स्थलों को नया रूप दिया गया, उनके नाम बदले गए या उन्हें हटा दिया गया।

135 साल पुरानी सेंट्रल सेक्रेटेरिएट लाइब्रेरी को भी दूसरी जगह ले जाया जा रहा है। उसे महज दो कमरों में समेटने की योजना है। वहां 8.5 लाख से अधिक पुस्तकों का ऐतिहासिक संग्रह है। इतने विशाल संग्रह के लिए दो कमरे नाकाफी हैं।

सेंट्रल विस्टा परियोजना के उद्घाटन के समय नरेन्द्र मोदी ने इसे ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के प्रतीकों से मुक्ति की दिशा में उठाया गया कदम बताया था। किसी गणतंत्र को अपनी औपनिवेशिक विरासत पर नए सिरे से विचार करने का पूरा अधिकार है। लेकिन मस्जिद औपनिवेशिक शासन का प्रतीक नहीं है।

मोदी, भाजपा और आरएसएस के लिए यह परियोजना पुनर्विकास से ज्यादा हिन्दुत्व की परियोजना नजर आती है। इस सोच में मस्जिद के लिए कोई जगह नहीं है।

सरकार की सेंट्रल विस्टा वेबसाइट पर लिखा है, ‘इस बदलाव की योजना बनाने समय यह सुनिश्चित करने का पूरा ध्यान रखा गया है कि मौजूदा इमारतों की विरासत संबंधी स्थिति सुरक्षित रहे और उनके आसपास नई परियोजनाएं बनाई जाएं।’

बात सुनने में अच्छी लगती है। जमीन पर इसका ठीक उलट हो रहा है। दिल्ली के अपने गजट में विरासत स्थल के रूप में दर्ज एक इमारत को अब अनधिकृत बता दिया गया है। कार्रवाई की जद में सिर्फ मस्जिद नहीं



आई है। आसपास की भाई राम कैप, मस्जिद कैप और डीआईडी कैप बस्तियों में रहने वाले 700 से अधिक परिवारों को भी बेदखली के नोटिस दिए गए हैं। इनमें से कई परिवार दशकों से यहां रह रहे हैं। कुछ का इस जगह से रिश्ता करीब एक सदी पुराना है।

दिल्ली हाई कोर्ट ने इन परिवारों को हटाकर लगभग 45 किलोमीटर दूर सावदा घेवरा की पुनर्वास कॉलोनी में बसाने का रास्ता साफ कर दिया। इन परिवारों में रसोइये, ड्राइवर, रेहड़ी-पटरी वाले और घरेलू कामगार शामिल हैं। यही लोग टुटियंस दिल्ली की रोजमर्रा की जिंदगी को चलाते हैं। अब उन्हें उनके काम की जगहों से दूर भेजा जा रहा है। उनके बच्चों के स्कूल भी पीछे छूट जाएंगे।

राष्ट्रीय राजधानी उन लोगों की निजी जागीर नहीं है, जो यहां शासन करते हैं। इसकी सड़कें और खुले सार्वजनिक स्थल जनता की धरोहर हैं। इन्हें जनता के हित में सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

सेंट्रल विस्टा परियोजना का संदेश समझना मुश्किल नहीं है। इसकी वास्तुकला, इसके प्रतीक और इस बारे में लिए गए फैसले कि क्या बचेगा और क्या मिटा दिया जाएगा, एक ही सभ्यतागत दृष्टिकोण को सामने रखते हैं। लेकिन भारत की पहचान इससे कहीं व्यापक है। उसकी राजधानी भी ऐसी ही होनी चाहिए। गणतंत्र की राजधानी का केन्द्र इतना विशाल और उदार होना चाहिए कि उसमें मस्जिद, मंदिर, चर्च, गुरुद्वारा और उनके आसपास रहने वाले गरीबों के लिए भी जगह हो।

दिल्ली कई बार बसी है और कई बार उजड़ी है। अपने पूर्ववर्तियों की विरासत मिटाने की कोशिश करने वाले शासक इतिहास में इस बात के लिए कम याद किए जाते हैं कि उन्होंने क्या बनवाया। उन्हें ज्यादा इस बात के लिए याद किया जाता है कि उन्होंने क्या ढहा दिया।

इस शहर के पत्थर उन तमाम साम्राज्यों से ज्यादा टिकाऊ साबित हुए हैं, जिन्होंने कभी इस पर अपना अधिकार जताया था।

सरकार के आत्मविश्वास की असली कसौटी यह नहीं है कि वह कितना कुछ मिटा सकती है। कसौटी यह है कि वह कितना कुछ सहेज सकती है। ■

एक गणतंत्र का केन्द्र इतना बड़ा होना चाहिए कि उसमें मस्जिद, मंदिर, चर्च, गुरुद्वारा और गरीब लोग समा सकें



शब्दों में बयां नहीं की जा सकती ऐसी बर्बरता

सोहिनी सेनगुप्ता

बोर्ड टा के नोट्यो करोरो ना, भाई’ (भाई, किताब को तो नष्ट मत करो!)

इस दुर्गा पूजा के दौरान पश्चिम बंगाल के बारासात का एक वीडियो शायद आपने देखा हो, जिसमें एक बुजुर्ग एक नौजवान से हाथ जोड़कर विनती कर रहा है कि जिन किताबों को वह जमीन पर पटक रहा है, कम-से-कम उनका तो कुछ आदर करें। वह बुजुर्ग लाचारी से कहता है कि यह कालजयी साहित्य है, मगर उसकी यह गुहार अनसुनी रह जाती है। उपद्रवियों की आंखों में सिर्फ यह बात खटक रही थी कि यह वामपंथियों का बुक स्टॉल है-और उनके खून के उबल जाने के लिए इतना ही काफी था; वे जो संदेश देना चाहते थे, वह बिल्कुल साफ था।

नागेरबाजार की एक अन्य घटना में, दक्षिणपंथी उपद्रवियों ने, जिनके तार कथित तौर पर भाजपा से जुड़े बताए जाते हैं, माकपा के एक स्टॉल पर रखी किताबों के पन्ने फाड़कर सड़क पर बिखेर दिए। सिलसिलेवार तौर पर रची जा रही इस सजिश को पहचानना कतई मुश्किल नहीं, जैसा कि डेमोक्रेटिक राइट्स प्रोटेक्शन एसोसिएशन (एपीडीआर) जैसे मानवाधिकार संगठनों ने रेखांकित किया। जादवपुर, जोड़ाबागान, एंटाली, करबा और हरिदेवपुर में भी ऐसी ही घटनाएँ दर्ज की गईं। उम्मीद के मुताबिक, भाजपा और संघ परिवार ने इन वारदातों से पल्ला झाड़ने में जरा भी देर नहीं की। खबरों के मुताबिक, मुख्यमंत्री सुवेंदु अधिकारी ने दुर्गा पूजा कमेटियों से साफ कहा कि वे उन वामपंथी संगठनों को स्टॉल लगाने की जगह न दें, जो इस उत्सव को ‘दुर्गा पूजा’ के बजाय ‘शारदोत्सव’ कहते हैं। इसके फौरन बाद, पास के 8वी बस स्टैंड पर माकपा कार्यकर्ताओं और जादवपुर विश्वविद्यालय के छात्रों ने एक स्टॉल को हटाने पहुंचे नगर निगम के बुलडोजर का रास्ता रोकने के लिए मानव श्रृंखला बना ली। आलम यह था कि किताबों को लादकर ले जाने के लिए कचरा ढोने वाली गाड़ियां बुलाई गई थीं!

15 अक्टूबर को यह विवाद कलकता हाईकोर्ट की चौखट पर पहुंच गया। न्यायमूर्ति सौगत भट्टाचार्य ने बोंगांव में पार्टी दफ्तर के पास माकपा को स्टॉल लगाने की इजाजत दे दी, मगर राज्य सरकार की अपील पर अगले ही दिन खंडपीठ ने इसपर रोक लगा दी।

दूसरी तरफ, भाजपा ने पूजा पंडालों के पास करीब 5,000 बुक स्टॉल लगाने का ऐलान किया, जहां प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, संघ विचारक श्यामा प्रसाद मुखर्जी पर लिखी किताबों के साथ-साथ पार्टी की प्रचार सामग्री बेची जानी थी।

किसी भी राजनीतिक दल को अपनी वैचारिक सामग्री बांटने का पूरा हक है, बशर्ते यह अधिकार सबके लिए बराबर हो। या शायद यह अधिकार तभी तक बराबरी से मिल



पूजा बुक स्टॉल्स ने लंबे समय से कोलकाता की मशहूर कॉलेज स्ट्रीट के दायरे से बाहर भी पढ़ने और किताबें देखने-परखने की संस्कृति को पहुंचाया है

सकता है जब तक लोकतंत्र वास्तव में जिंदा हो और नागरिक अधिकारों की बात करना बीती सदी का कोई बेतुका राग न लगने लगे। कोलकाता की सड़कों और राज्य के दूसरे कोनों में जो कुछ दिखा, वह बिना किसी शक के साबित करता है कि यह महज सियासी बदले की आग थी।

वामपंथी बुक स्टॉलों को इस तरह कानून की धज्जियां उड़ाते हुए निशाना बनाए जाने के बाद भी, प्रदेश भाजपा अध्यक्ष शमिक भट्टाचार्य यही राग अलापते रहे कि ‘पार्टी के सच्चे कार्यकर्ता’ कभी किताबों को सड़क पर नहीं फेंक सकते। उन्होंने यह भी जोड़ा कि उपद्रवियों के खिलाफ कार्रवाई के लिए उन्होंने मुख्यमंत्री से बात की है।

इसके बाद भट्टाचार्य माकपा शासन के दौरान झेली गई राजनीतिक हिंसा का रोना रोने लगे और कहने लगे कि बम के छर्रों के निशान आज भी उनके बदन पर मौजूद हैं। क्या वे अपने इन पुराने किस्सों के जरिये, भले वे सच हों, आज की इस गुंडागर्दी को जायज ठहराने की जमीन तैयार कर रहे थे या यह इशारा कर रहे थे कि हुकूमत को इन हरकतों पर आंखें मूंद लेनी चाहिए?

राज्य के वित्त मंत्री स्वपन दासगुप्ता ने हैरान होने का स्वांग रचा: ‘मुझे नहीं पता कि वे कौन लोग हैं। लेकिन मैं पृच्छा हूं, उनकी इतनी हिम्मत कैसे हुई?’ संघ ने भी यह दिखावा किया कि वह हर किसी के साहित्य बांटने के

किताबों के पन्ने फाड़कर सड़कों पर फेकना

और उन्हें कचरा गाड़ियों में लादना विचारों

की सदियों पुरानी परंपरा को कुचलने की

खुली कोशिश है। किताबों के प्रति अपने प्रेम

पर गर्व करने वाले कोलकाता ने पहले

कभी ऐसा हमला नहीं देखा

अधिकार का पक्षधर है, ‘बशर्ते ये स्टॉल सार्वजनिक जगहों पर अवैध अतिक्रमण न करते हों’।

आमटा में, भाजपा विधायक अमित सामंत का एक वीडियो सामने आया जिसमें वह माकपा के स्टॉल पर रखी किताबों के पन्ने पलटते दिखे, जबकि पार्टी कार्यकर्ता और स्वयंसेवक नजरें चुराते आसपास बैठे थे। जब सामंत कैमरे के सामने ऐसा करके नुकसान की भरपाई का नाटक कर रहे थे, तभी बारासात से एक और खबर आ गई। सड़क पर फेंके गए वामपंथी साहित्य की जगह हनुमान चालीसा की प्रतियां सजा दी गई थीं। गुस्से से लाल भाजपा विधायक पूर्णिमा चक्रवर्ती के शब्दों में, यह ‘वामपंथियों द्वारा ‘हनुमान’ शब्द के इस्तेमाल का माकूल जवाब था, जिन्होंने यह कहकर रोना रोया था कि भाजपा समर्थक इलाके में बदरों जैसी हरकतें कर रहे हैं।’

कॉलेज स्ट्रीट का ‘बोर्ड पाड़ा’ (किताबों का मोहल्ला), जो देश के सबसे मशहूर किताब बाजारों में शुमार है, किताबों के साथ कोलकाता के गहरे दिली रिश्ते की मुकमल मिसाल है। प्रकाशक, पुरानी किताबें बेचने वाले और पटरियों पर फड़ लगाने वाले दुकानदार पीढ़ियों से छात्रों और पाठकों की बौद्धिक भूख मिटाते आए हैं।

भाजपा सरकार के सत्ता में आने के कुछ ही दिनों बाद, नगर विकास मंत्री अग्निमित्रा पॉल ने कॉलेज स्ट्रीट को लंदन

की ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट की तर्ज पर संवारने का खाका पेश किया। फुटपाथों से दुकानें और कथित ‘अतिक्रमण’ हटा दिए गए या उन्हें सख्त पहरे में डाल दिया गया, मगर एक बुनियादी सवाल को बिना सुलझाए छोड़ दिया गया: जो लोग इस बाजार की रागों में लहू बनकर दौड़ते हैं, अगर उन्हें ही उजाड़ दिया जाए तो भला बुनियादी ढांचा कैसे चमक सकता है?

पूजा पंडालों के ये बुक स्टॉल कॉलेज स्ट्रीट के ‘बोर्ड पाड़ा’ से निकलकर पढ़ने और किताबों को टटोलने की संस्कृति को दूर-दूर तक ले जाने का जरिया रहे हैं। लाल कपड़े में लिपटे बांस के साधारण ढांचे वाले इन कामचलाऊ स्टॉलों पर आमतौर पर मजदूर आंदोलनों के इतिहास, राजनीतिक सिद्धांतों और पार्टी साहित्य के अलावा आम पाठकों की पसंद की किताबें भी मिलती रही हैं। ये स्टॉल आम लोगों को उन नए विचारों से रूबरू कराने का जरिया रहे हैं जिनसे शायद उनका वास्ता कभी न पड़ता। भाजपा अब अपनी किताबें बेचने के लिए इसी पुरानी रवायत की सवारी करना चाहती है। इसमें कोई हर्ज भी नहीं होता, अगर अपनी दुकान चमकाने की इस होड़ में दूसरों के विचारों को कुचलने और तोड़ने की जिद शामिल न होती। यही असहिष्णुता राज्य में सत्ता परिवर्तन के बाद से लगातार बेपर्दा हो रही है।

1 सितंबर को, भाजपा की युवा शाखा भारतीय जनता युवा मोर्चा (भाजयुमो) के भगवाधारी कार्यकर्ताओं ने ‘आनंदबाजार पत्रिका’ के दफ्तर के बाहर जमकर बवाल काटा। अखबार का कुसूर सिर्फ इतना था कि उसने जादवपुर विश्वविद्यालय परिसर में हुई हिंसा की रिपोर्टिंग में 21 अगस्त को ‘भगवा गुंडागर्दी’ कहा था। बेकाबू भीड़ ने इमारत को बंदरंग कर दिया और उसके सफेद खंभों पर भगवा रंग पोत दिया।

मध्य कोलकाता की ऐतिहासिक पहचान ‘अकादमी ऑफ फ़ाइन आर्ट्स’ भी इस नफरत की चपेट में आ गई। जुलाई में, अकादमी के टिकट घर पर भगवा रंग पोत दिया गया, मानो अपनी राजनीतिक सरहद का खूंट्टा गाड़ा जा रहा हो। वरिष्ठ रंगकर्मीयों और प्रगतिशील संस्कृतिकर्मियों ने इसकी तीखी मुखालफत की और 11 अगस्त को इकट्ठा होकर उन भगवा दीवारों पर दोबारा सफेद रंग फेर दिया। मगर बमुश्किल 24 घंटे बीते थे कि अभिनेता रुद्रनील घोष की अगुवाई में भाजपा कार्यकर्ताओं का एक जत्था फिर आ धमका और उसने दीवारों को दोबारा भगवा रंग में रंग दिया।

माकपा के 34 वर्षों के शासनकाल की अपनी खामियां हो सकती हैं और उस पर सवाल उठाने की पूरी गुंजाइश है, लेकिन जो राज्य और उसकी ऐतिहासिक राजधानी हमेशा किताबों की खुशबू, विचारों की उड़ान और अपनी समृद्ध तहजीब पर नाज करती रही हो, उसने अपने जीने के सलीके पर ऐसा बर्बर हमला पहले कभी नहीं देखा। ■

कृपया पेज 7 भी देखें

ADVERTISEMENT RATE CARD

w.e.f. 15 October 2026

NATIONAL HERALD
ON SUNDAY

संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu

www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com



Commercial Display (w.e.f 15 October 2026)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition) NH(NE)	Sunday Navjivan (Mumbai) NH(M)	Sunday Navjivan (National Edition) SNJ	Combined Rate
Full Page (1702 sq.cm)	Rs 8.65 Lakh	Rs 8.65 Lakh	Rs 8.65 Lakh	NH(NE)+NH(M)+SNJ Full Page Rs 22 Lakh
Half Page (852 sq. cm)	Rs 5 Lakh	Rs 4 Lakh	Rs 5 Lakh	
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 2.40 Lakh	Rs 1.60 Lakh	Rs 2.40 Lakh	NH(NE)+NH(M) Full Page Rs 17 Lakh
< Quarter Page (per sq. cm)	Rs 600	Rs 400	Rs 600	

PAGE PREMIUM }		Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
	Front page	100% Surcharge	100% Surcharge
	page (3 & back)	25% Surcharge	25% Surcharge
	Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge
*Advance payment is needed for all political advertisements.			

Classified for festival greetings, anniversary & notices

Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000

< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

The Associated Journals Limited

Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:

Name: **Associated Journals Limited**
Bank Name: **Canara Bank**
Branch Name: **I P Estate, New Delhi-110002**
C/A No.: **90171010003955**; IFSC Code: **CNRB0019017**
GST No.: **27AAECA1180A1ZB** ; PAN No.: **AAECA1180A**

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of “Associated Journals Limited” and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions

w.e.f. 15 October 2026

National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and/or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Journals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. “Reader” advertisements are accepted but will be distinguished from ‘news matter’ by a rule around the advertisement matter and expression ‘advt’ will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructions behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in

inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Journals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for the actual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, prepayments/postpayments or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.

वोट, अदालत और विरोध

लोकतंत्र के इन साधनों में, तीसरा ही है जिसमें भारतीयों के पास वास्तविक शक्ति होती है

आकार पटेल

लोकतंत्र में हमारे पास तीन साधन हैं—वोट यानी मतदान, कोर्ट यानी अदालत और विरोध या प्रोटेस्ट। इनमें से केवल एक ही ऐसा साधन है जिस पर भारतीयों का वास्तविक नियंत्रण है, और वह है—विरोध यानी प्रोटेस्ट।

मतदान को ही लोकतंत्र मान लिया जाता है, मानो दो चुनावों के बीच लोकतंत्र खत्म ही हो जाता हो। दशकों तक, भारत की चुनाव प्रक्रिया ने प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता बढ़ाने का काम किया है। वह दौर अब पीछे छूट चुका है।

संविधान हमें बताता है कि 18 वर्ष से अधिक आयु का प्रत्येक भारतीय, जिसे रइस संविधान या किसी सक्षम विधायिका द्वारा बनाए गए कानून के तहत - निवास न करने, मानसिक रूप से अस्वस्थ होने, अपराध करने, या भ्रष्ट अथवा गैर-कानूनी गतिविधियों में शामिल होने के आधार पर - अयोग्य न ठहराया गया हो,र वह किसी भी ऐसे चुनाव में मतदाता के रूप में पंजीकरण कराने का हकदार होगा।

संविधान का यह निर्देश मौजूदा चुनाव आयोग के लिए एक सुझाव की तरह है। इसमें यह मान लिया गया—जाहिर तौर पर सरकार के आदेश पर—कि करोड़ों लोगों को बिना किसी वजह के मानसिक पीड़ा देने का यह सिलसिला बिना किसी रुकावट के चलता रहेगा।

पिछले चार हफ्तों में कितने फैसले वापस लिए गए या स्पष्टीकरण जारी किए गए, इसका सर्वे करने पर लगभग एक दर्जन मामलों की सूची सामने आती है। इनमें एक 'विशेष वोटर पंजीकरण अभियान' शामिल है, जिसका मकसद उन लोगों को शामिल करना है जो पिछले 'वोट काटने के विशेष अभियान' (यानी वोटिंग के अधिकार से

बेदखल करने वाले अभियान) में छूट गए थे। इसके अलावा, कुछ लोगों के लिए घोषणा-पत्र जमा करने की शर्त को हटाना, कुछ अन्य लोगों के लिए व्यक्तिगत रूप से पेश होने की अनिवार्यता में छूट देना, खराब सॉफ्टवेयर की समीक्षा करना, और मतदाताओं (जिनमें ज्यादातर मुसलमान हैं) के खिलाफ तीसरे पक्ष द्वारा आपत्तियां दर्ज कराने की गलत प्रथा को सीमित करना (पूरी तरह खत्म न करना) भी इसमें शामिल है।

इसके अलावा, अब तक बिना किसी ठोस वजह के—सिर्फ पारदर्शिता न रखने की मंशा से—विरोध करने के बाद, अब सच करने लायक मतदाता सूचियां लाई जा रही हैं। और अब निजी स्कूलों के शिक्षकों से भी वे अतिरिक्त काम करवाए जा रहे हैं, जिन्हें करने के लिए सरकारी स्कूलों के बेचारे कर्मचारियों को घर-घर भटकना पड़ता था; इसके अलावा और भी कई काम उनसे लिए जा रहे हैं।

चुनाव आयोग द्वारा उठाए गए कदमों का क्रम और संख्या यह दर्शाती है कि कितनी लापरवाही के साथ इस अभियान की शुरुआत की गई थी। जिस तेजी से ये कदम उठाए जा रहे हैं, उससे घबराहट साफ झलकती है। यह खुलासा कि फैसलों में आयोग के बहुमत की अनदेखी की गई थी, शायद ही किसी के लिए हैरानी की बात रही हो। क्या बाद में किए गए ये सुधार, फैसले वापस लेना और समीक्षाएं इस गड़बड़ी को दुरुस्त कर पाएंगी? बिल्कुल नहीं। हम पहले ही भारतीय नागरिकों के कई स्तरों में बंट चुके हैं: कुछ मतदाता हैं, कुछ के नाम हटा दिए गए हैं, कुछ ने अपील कर रखी है, कुछ को अपनी स्थिति के बारे में कोई जानकारी नहीं है, कुछ ऐसे हैं जिनकी अब कोई परवाह नहीं करता, और कुछ ऐसे हैं जो फैसले के इंतजार में हैं।



कागाज़ पर कठिन, पर ज़मीनी स्तर पर असंभव नहीं

एन.आर. मोहंती

ओडिशा के कई हिस्सों में 8 अक्टूबर को 12 घंटे के बंद ने परिवहन, खनन और सामान्य जनजीवन को ठप कर दिया। इंडिया गठबंधन ने भुवनेश्वर में विशाल 'परिवर्तन रैली' आयोजित की और कार्यकर्ताओं ने मुख्यमंत्री मोहन चरण माझी के आवास की ओर कूच की कोशिश की।

कोरापुट, रायगड़ा, क्योड़ार, सुंदरगढ़, मयूरगंज और नबरंगपुर जैसे कई खनिज समृद्ध जिलों में आदिवासियों के सुलगते आक्रोश के बीच भाजपा और इंडिया गठबंधन खान एवं खनिज (विकास और विनियमन) संशोधन अधिनियम 2026 के समर्थन और विरोध में आमने-सामने आ गए हैं। राज्यों के पक्ष में आए सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बावजूद संसद में आनन-फ़ानन में पारित किया गया यह संशोधन राज्य सरकारों को खनिज अधिकारों और खनिज-युक्त भूमि पर स्वतंत्र रूप से नए कर, उपकर या स्थानीय शुल्क लगाने से रोकता है, और उन्हें सीधे केन्द्र के अधीन लाता है।

ओडिशा की सत्ता से पिछले 26 सालों से बाहर रही कांग्रेस में जैसे ही सक्रियता के नए संकेत दिखे, यह सवाल उठने लगा है: क्या वह 2029 में सत्ता में वापसी का सफल दांव चल सकती है? कामाज पर यह काम बेहद कठिन जान पड़ता है। 2024 के विधानसभा चुनाव में भाजपा और बीजेडी दोनों को 40 प्रतिशत से थोड़े अधिक वोट मिले थे, जबकि कांग्रेस 13 प्रतिशत मतों के साथ तीसरे स्थान पर सिमट गई थी। जीत के करीब पहुंचने के लिए देश की सबसे पुरानी पार्टी को वोट शेयर को तीन गुना करना होगा।

नवीन पटनायक के नेतृत्व वाली बीजेडी सरकार टकराव से बचती थी और 'जियो और जीने दो' के फलसंफ पर यकीन रखती थी। उसने विपक्षी दलों के सभी शीर्ष नेताओं की तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाया। तत्कालीन मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस सत्ताधारी दल की इस मेहन-मिलाप की राजनीति का शिकार बन गई। बीजेडी के इस दोस्ताना रुख ने कांग्रेस के आक्रामक तेवर को पूरी तरह कुंद कर दिया। 2000 से 2009 तक बीजेडी की सहयोगी रही भाजपा इस प्रभाव से बची रही, क्योंकि एक तो वह सत्ता में साझेदार थी और दूसरे 2009 में नवीन पटनायक द्वारा गठबंधन तोड़ने के बाद उसे बीजेडी के संरक्षण की जरूरत नहीं रह गई थी। 2009 में अकेले चुनाव लड़ते हुए बीजेडी ने 147 में से 103 सीटें जीतीं (39 प्रतिशत वोट)। कांग्रेस 27 सीटों और 29 प्रतिशत वोट शेयर के साथ दूसरे स्थान पर रही, जबकि भाजपा को सिर्फ छह सीटें (15 प्रतिशत वोट) मिलीं।

2014 में बीजेडी ने अपनी सीटों की संख्या बढ़ाकर 117 और वोट शेयर 44 प्रतिशत कर लिया। कांग्रेस में अंदरूनी बिखराव हुआ और वह 27 से लुढ़ककर 16 सीटों पर आ गई; हालांकि उसका वोट शेयर मामूली घटकर 29

आम तौर पर भाजपा के खिलाफ, और विशेष रूप से नरेन्द्र मोदी के खिलाफ, भारी नाराजगी है

इस पूरी तरह से बिगड़े हुए हालात को केवल 'पूरी तरह से वापस पुरानी स्थिति में लौटने' (रोलबैक) के जरिये ही ठीक किया जा सकता है। अफ़सोस की बात है कि अब चुनाव हो चुके हैं, इसलिए ऐसा करने से भी चुनावी वैधता को लेकर समस्याएं खड़ी हो जाएंगी—पश्चिम बंगाल इसका साफ उदाहरण है।

इसलिए, नहीं। यह गड़बड़झाला इतने बड़े पैमाने का है कि इसे केवल 'मिनिमम गवर्नमेंट, मैक्सिमम गवर्नेंस' के वास्तुकार द्वारा ही स्थापित किया जा सकता था।

हमारे पास दूसरा लोकतांत्रिक साधन 'अदालत' है। संविधान का अनुच्छेद 32 हमें मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए अदालत जाने के हमारे अधिकार की गारंटी देता है, यानी इसे रशुनिश्चितर करता है। ध्यान दें कि यहां जिस चीज़ की गारंटी दी गई है, वह है

हमारे पास दूसरा लोकतांत्रिक साधन 'अदालत' है। संविधान का अनुच्छेद 32 हमें मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए अदालत जाने के हमारे अधिकार की गारंटी देता है, यानी इसे रशुनिश्चितर करता है। ध्यान दें कि यहां जिस चीज़ की गारंटी दी गई है, वह है

विरोध हमारा सबसे प्रगावी हथियार है लेकिन सरकार डरी हुई है, इसीलिए वह विरोध को दबाने में इतनी ऊर्ज़ा लगा रही है



सीए के खिलाफ विरोध प्रदर्शनों का नेतृत्व करने वाली महिलाओं ने असम में जो हुआ था, उसे अन्य जगहों पर होने से रोकने में कामयाबी हासिल की

हमारे पास दूसरा लोकतांत्रिक साधन 'अदालत' है। संविधान का अनुच्छेद 32 हमें मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए अदालत जाने के हमारे अधिकार की गारंटी देता है, यानी इसे रशुनिश्चितर करता है। ध्यान दें कि यहां जिस चीज़ की गारंटी दी गई है, वह है

अदालत जाने की आज़ादी। इसके बाद अदालती कार्यवाही में क्या होता है, यह हम इस देश में रोज देखते ही हैं, इसलिए इस पर और ज़्यादा विस्तार से बात करने की ज़रूरत नहीं है। हमारे बेहतरीन वकील पहले ही बता चुके हैं कि अभी हालात क्या हैं। चुनाव आयोग की तरह ही, यहां भी व्यवस्था कमज़ोर हुई है।

तीसरा लोकतांत्रिक साधन—और इकलौता ऐसा साधन जिस पर हमारा वास्तविक नियंत्रण है—वह है प्रोटेस्ट यानी विरोध-प्रदर्शन। सरकार के सामने जाकर यह जताना कि हमें लगता है कि हमारे अधिकारों का हनन हुआ है और इसे रुकना चाहिए। सरकार हमारे वोट के साथ खिलवाड़ कर सकती है (जैसा कि वह कर रही है), और न्याय व्यवस्था भी, जो कार्यपालिका के इशारे पर काम करती है, हमारे साथ मनमानी कर सकती है। लेकिन हमारे शरीर पर अपना नियंत्रण थोपना उनके लिए मुश्किल होता है, हालांकि वे ऐसा करने की कोशिश ज़रूर करते हैं।

राज्य यानी सरकार के गलत बर्ताव को रोकने के लिए विरोध हमारा सबसे अरसरदार हथियार है। यही वजह है कि सरकार इसे रोकने, सीमित

करने और दबाने की कोशिश में अपनी पूरी ताकत लगा देती है। जब हजारों की संख्या में भारतीयों ने एकजुट होकर दिल्ली के दरवाजों पर पड़ाव डाल दिया तो विवादित कृषि कानून वापस लेने पड़े। सरकार को इन्हें पूरी तरह रद्द करने में पूरा एक साल लग गया, और ये महीने बेकार चले गए क्योंकि सत्ता में बैठे शहंशाह यह नहीं दिखाना चाहते थे कि वे जनता के सामने झुक गए हैं। लेकिन लोगों के एकजुट होते ही कई लोगों को यह साफ हो गया था कि जीत जनता की ही होगी। मज़ेदार बात यह रही कि इस जीत के साथ एक माफ़ी भी मिली। यह माफ़ी चाहिए। सरकार हमारे वोट के साथ खिलवाड़ कर सकती है (जैसा कि वह कर रही है), और न्याय व्यवस्था भी, जो कार्यपालिका के इशारे पर काम करती है, हमारे साथ मनमानी कर सकती है। लेकिन हमारे शरीर पर अपना नियंत्रण थोपना उनके लिए मुश्किल होता है, हालांकि वे ऐसा करने की कोशिश ज़रूर करते हैं।

राज्य यानी सरकार के गलत बर्ताव को रोकने के लिए विरोध हमारा सबसे अरसरदार हथियार है। यही वजह है कि सरकार इसे रोकने, सीमित

करने और दबाने की कोशिश में अपनी पूरी ताकत लगा देती है। जब हजारों की संख्या में भारतीयों ने एकजुट होकर दिल्ली के दरवाजों पर पड़ाव डाल दिया तो विवादित कृषि कानून वापस लेने पड़े। सरकार को इन्हें पूरी तरह रद्द करने में पूरा एक साल लग गया, और ये महीने बेकार चले गए क्योंकि सत्ता में बैठे शहंशाह यह नहीं दिखाना चाहते थे कि वे जनता के सामने झुक गए हैं। लेकिन लोगों के एकजुट होते ही कई लोगों को यह साफ हो गया था कि जीत जनता की ही होगी। मज़ेदार बात यह रही कि इस जीत के साथ एक माफ़ी भी मिली। यह माफ़ी चाहिए। सरकार हमारे वोट के साथ खिलवाड़ कर सकती है (जैसा कि वह कर रही है), और न्याय व्यवस्था भी, जो कार्यपालिका के इशारे पर काम करती है, हमारे साथ मनमानी कर सकती है। लेकिन हमारे शरीर पर अपना नियंत्रण थोपना उनके लिए मुश्किल होता है, हालांकि वे ऐसा करने की कोशिश ज़रूर करते हैं।

राज्य यानी सरकार के गलत बर्ताव को रोकने के लिए विरोध हमारा सबसे अरसरदार हथियार है। यही वजह है कि सरकार इसे रोकने, सीमित

हमारे पास दूसरा लोकतांत्रिक साधन 'अदालत' है। संविधान का अनुच्छेद 32 हमें मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए अदालत जाने के हमारे अधिकार की गारंटी देता है, यानी इसे रशुनिश्चितर करता है। ध्यान दें कि यहां जिस चीज़ की गारंटी दी गई है, वह है



बेकाबू होते संघी और कल के दुश्मन आज के दोस्त

सौरभ सेन

इस साल कोलकाता में दुर्गा पूजा के दौरान दो ऐसी अप्रत्याशित घटनाएं हुईं, जिन्होंने उत्सव का उल्लास फीका कर दिया: एक बुलडोजर से किताबों का एक अस्थायी स्टॉल गिर गया जाना, दूसरा- किताबों के एक स्टॉल का अस्थायी 'फुचका' (पानी-पूरी) दुकान में तब्दील कर दिया जाना। दक्षिणपंथी उपद्रवियों, वामपंथी कार्यकर्ताओं और आम नागरिकों की झड़पों के बीच किताबों के स्टॉल अचानक राजनीतिक टकराव का केन्द्र बन गए। शुरुआत विधानसभा में मुख्यमंत्री सुवेंदु अधिकारी द्वारा वामपंथी दलों को दी गई धमकी से हुई, कि अब से दुर्गा पूजा पंडालों में बुकस्टॉल नहीं लगाने दिए जाएंगे। किसी भी मंत्री ने इसका विरोध करने या इसमें बदलाव का सुझाव देने की हिम्मत नहीं दिखाई।

यही कारण था कि बाद में भाजपा-आरएसएस के कुछ नेताओं के दिखावटी बयान पर किसी को यकीन नहीं हुआ। वामपंथ के कट्टर आलोचक स्वप्न दासगुप्ता जब कह रहे थे कि इन घटनाओं से उनका सिर शर्म से झुक गया है, उन्हें याद दिलाया गया कि मुख्यमंत्री जब धमकी दे रहे थे, दासगुप्ता ठीक उनके बगल में बैठे थे। ऐसे में नाराजगी तो दूर, हैरानी की बात ही बेमानी है!

सच तो यह है कि अधिकारी और भाजपा विधायकों का एक गुट, जिनमें से ज्यादातर हिन्दी भाषी हैं, वामपंथियों के खिलाफ़ खुली जंग की मुद्रा में हैं। एक भाजपा विधायक के 'वाम वध' वाले बैनर पर वामपंथियों की मौत का संदेश था। विहिप और बजरंग दल से सम्बद्ध होने का दावा करने वाले कुछ समूहों ने माकपा, एसयूसीआई और अन्य वामपंथी दलों के बुक



किताबें क्यों बेचें, भि्रल बेंचें? पश्चिम बंगाल के भाजपा नेताओं का ऐसा कहना है

हाल की घटनाओं से पता चलता है कि सरकार के लिए एनआरसी को बिना किसी विरोध के लागू करना आसान नहीं होगा—भले ही भाजपा नेतृत्व करोड़ों लोगों को उनके अधिकारों से वंचित करके, उनकी नागरिकता छीनकर और उन्हें हिरासत केंद्रों में डालकर खुश होने के सपने देखता हो। शांतिपूर्ण तरीके से इकट्ठा होना (अनुच्छेद 19) एक मौलिक अधिकार है, जिसका अर्थ है कि इसे सरकार के हस्तक्षेप से काफ़ी हद तक सुरक्षा प्राप्त है। लेकिन असल में, पिछले कुछ दशकों में इस स्वतंत्रता पर सरकार का दखल, स्वतंत्रता से कहीं ज़्यादा बढ़ गया है। और अब यह स्थिति ऐसी हो गई है कि लोगों को तय की गई जगहों तक ही सीमित रहना पड़ता है और इसके लिए भी सरकार की मंजूरी लेनी पड़ती है। जब तक कि इस अधिकार को वापस न ले लिया जाए—जैसा कि आज दिल्ली की सड़कों पर युवा महिलाएं और पुरुष कर रहे हैं।

हममें से कई लोगों के लिए, यह हमारे दौर की सबसे उप्साहजनक बात है। एक निर्दयी और सत्तावादी सरकार को, हमारे युवाओं ने आखिरकार जोरदार चुनौती दी है। ■



बेकाबू होते संघी और कल के दुश्मन आज के दोस्त

स्टॉल तोड़ दिए। खुलेआम कहा कि वे सुवेंदु-दा के निर्देशों का पालन कर रहे थे। अगर संघ से संबद्धता और उसके संरक्षण का दावा करने वाले बिहार-यूपी के छोटे-मोटे गुंडे बंगाल के 'भद्रलोक' को भाजपा का समर्थन करने को लेकर असहज कर रहे हैं, तो वे बंगाल में भविष्य की राजनीतिक नजदीकियों के लिए जमीन भी तैयार कर रहे हैं। आरएसएस की पूर्वी क्षेत्रीय इकाई के प्रचार प्रमुख और वैज्ञानिक जिष्णु बसु ने पूरे यकीन से कहा, "आरएसएस किताबों को नष्ट करने का समर्थन नहीं करता। हम ऐसी कायरतापूर्ण हरकतों की निंदा करते हैं।"

सबकुछ तयशुदा था। कोलकाता नगर निगम का बुलडोजर पहुंचा, तब पुलिस और केन्द्रीय बल पहले से मौजूद थे। भाजपा, विहिप, बजरंग दल के उपद्रवियों ने किताबें फाड़ीं, स्टॉल नष्ट कर दिए। वामपंथी कार्यकर्ताओं और स्थानीय निवासियों ने बुलडोजर रोकने को मानव श्रृंखला बनाई। ऐसे वीडियो वायरल हैं, जिनमें कुछ बुजुर्ग उपद्रवियों से किताबें नष्ट न करने की गुहार लगा रहे हैं। पूरे शहर और विभिन्न जिलों से वामपंथी बुक स्टॉलों पर हमलों की खबरें आईं, जबकि आरएसएस के बुक स्टॉलों की ओर किसी ने देखा तक नहीं।

भाजपा कार्यकर्ताओं के दबावों वाले वीडियो वायरल हुए। उत्तरी कोलकाता के एक स्थानीय भाजपा नेता ने कहा, "हम वामपंथी साहित्य बंटने या बिकने नहीं देंगे। किताबों की दुकानें लगाने का क्या मतलब है? आपको त्रिशूल, तलवारें और कपड़े बंटने चाहिए किताबों का काम हम पर छोड़ देना चाहिए!" हिन्दी या बंगाली लहजे वाली हिन्दी में बोल रहे, संघ से जुड़े इन युवाओं ने सांस्कृतिक

हाल ही में दिल्ली में हुई घटनाओं ने ममता बनर्जी, एमए, बेबी, राहुल गांधी और दीपकर भट्टाचार्य जैसे नेताओं को एक मंच पर ला खड़ा किया। यह एकजुटता एसआईआर और छात्रों के खिलाफ की गई कार्रवाई को लेकर दिखी, जिससे 'इंडिया' गठबंधन के फिर से सक्रिय होने की चर्चाओं को नई ज़मीन दे दी है। क्या यह आपसी तालमेल ज़मीनी स्तर तक भी पहुंच रहा है, जिससे भाजपा के खिलाफ सीधी टक्कर की स्थिति बन सके? माकपा के एक कार्यकर्ता ने कहा, "अगर हमारे नेता कहें, तो हम बूथ स्तर पर भी मिलकर काम कर सकते हैं, यहां तक कि नगर निगम या नगरपालिका चुनावों में भी।"

कल के दुश्मन अगर कल के साथी बन जाते हैं, तो यह बंगाल में भाजपा के लिए एक बड़ा संकेत हो सकता है। ■

सौरभ सेन कोलकाता के स्वतंत्र लेखक हैं जो राजनीति, मानवाधिकार और विदेश मामलों पर लिखते और टिप्पणी करते हैं

राज्य 360°



पंजाब

मानसा में कत्ल और ‘आप’ का टूटता तिलिस्म

हरजेश्वर पाल सिंह

पंजाब ने कई हत्याएं देखी हैं, लेकिन शायद किसी कत्ल को ऐसे लाइव नहीं देखा था। 13 अक्तूबर को सुबह करीब 9:15 बजे परविंदर सिंह ‘झोटा’ फोन से रिकॉर्ड करते मानसा की एक दवा की दुकान में दाखिल हुआ। लगभग चार मिनट तक, फेसबुक लाइव पर उसके प्रशंसकों ने झोटा को दुकान के मालिक अश्विनी कुमार से उलझते देखा, जहां वह उस पर एक बुजुर्ग को नशा बेचने का आरोप लगा रहा था। कुमार ने पिस्तौल निकाल ली। इसपर झोटा ने ‘मार मैन्, मार मैन्’ (मार मुझे, चला गोली) कहकर ललकारा। फिर तीन गोलियों की तड़तड़ाहट फोन का जमीन पर गिरना और स्क्रीन पर अंधेरा!

झोटा का मतलब होता है ‘सांड’, ऐसा उपनाम जो परविंदर पर सटीक बैठता था। पूर्व मुक्केबाज और नशे की लत से उबर चुका नौजवान अपने ही अतीत के खोफ को ‘नशा रोको, रोजगार दो’ की जंग में बदल चुका था। मानसा और बठिंडा के गांवों की कमेटियों ने उसके नशा-विरोधी मॉडल को हाथों-हाथ लिया था। झोटा का तरीका सीधा लेकिन कारगर था: हाथ में ऑन कैमरा लिए दुकान या अड्डे में घुसना और चिट्ठा बेचने वालों को रंगे हाथों पकड़ना।

अश्विनी कुमार के साथ उसका टकराव नया नहीं था। जुलाई 2023 में, झोटा और उसके समर्थकों ने इस केमिस्ट को प्रतिबंधित दवाएं बेचने के आरोप में जूतों की माला पहनाकर बाजार में घुमाया था। दोनों पक्षों पर एफआईआर हुई और झोटा को कई महीने सलाखों के पीछे काटने पड़े। दूसरी तरफ, कम-से-कम पांच एफआईआर झेल रहे कुमार को 7.62 एमएम पिस्तौल और 12-बोर की बंदूक का लाइसेंस दे दिया गया।

इसने नेता, पुलिस और तस्कर के उस पुराने गठजोड़ को बेनकाब कर दिया, जिसे राजनीति विज्ञानी ‘लौह त्रिकोण’ कहते हैं और पंजाब के लोग जिसे आम बोलचाल में ‘सेटिंग’ कहते हैं। झोटा की हत्या के कुछ ही

दिनों के भीतर थाना प्रभारी को निलंबित कर दिया गया और एसएसपी ने दावा किया कि एक महीने में केमिस्टों के खिलाफ 138 से ज्यादा मामले दर्ज किए गए। सवाल उठा कि पुलिस ने यह काम तीन साल बाद क्यों किया?

*

पिछले चार वर्षों में मानसा ने पंजाब को दो ‘शहीद’ दिए हैं। मई 2022 में सिद्धू मूसेवाला की जान ली और अब कैमरे के सामने झोटा की जान। इस बार भी हत्या के खिलाफ मूसेवाला जैसा ही जनक्रोश है। एसजीपीसी ने कहा कि झोटा का चित्र दरबार साहिब के केन्द्रीय सिख म्यूजियम में लगाया जाएगा, जबकि परिवार उसे आधिकारिक शहीद का दर्जा और मानसा में उसकी प्रतिमा लगाने की मांग कर रहा है। जिस शास्त्र को राज्य ने जेल में डाला, उसे पंथ और अवागम नायक मान रहा है।

आम आदमी पार्टी की प्रतिक्रिया वही रही जिसमें वह माहिर है-कहानी का रुख बदलना। पुलिस ने इसे ‘निजी रंजिश’ का रंग देने की कोशिश की। पैतरा नहीं चला, क्योंकि पूरा पंजाब वह वीडियो देख चुका था। इसके बाद बुलडोजर निकाले गए। महज 24 घंटे के भीतर प्रशासन कुमार की दुकान और घर को ढहाता दिखा। यूपी से आयातित ‘बुलडोजर न्याय’ के पूरा होने का भौड़ ने इंतजार नहीं किया। लोगों ने दवाएं निकालीं, जिनमें उनके मुताबिक प्रतिबंधित कैप्सूल थे, और ठिकाने को फूंक डाला।

सरकार का चुनाव-पूर्व सबसे बहुप्रचारित अभियान ‘युद्ध नशियां विरुद्ध’ (नशे के खिलाफ जंग) है। प्रदर्शनकारियों ने इसे ‘युद्ध नशा रोकन वालियां विरुद्ध’ (नशा रोकने वालों के खिलाफ जंग) करार दिया। ‘ईमानदार सीएम’ का बखान करने वाले होर्डिंग्स पर कालिख पोत दी गई और ‘ईमानदार’ को काटकर ‘बेईमान’ लिख दिया गया। बयानों की इस जंग में ‘आप’ का वार रूम पूरी तरह मात खा गया।

इसमें एक और गहरा विरोधाभास था। झोटा के दोस्तों के अनुसार, 2022 में उसने



परविंदर सिंह ‘झोटा’ (बाएं) की उनके फेसबुक अकाउंट पर लाइव फीड (ऊपर) के दौरान गोली मारकर हत्या कर दी गई

मानसा से ‘आप’ के विजय सिंगला का इस उम्मीद में समर्थन किया था कि पार्टी नशे के कारोबार को खत्म करेगी। चंद महीनों के भीतर सिंगला को भ्रष्टाचार के आरोप में मंत्रिमंडल से निकाल दिया गया। उम्मीदें टूटने पर झोटा अलग हो गया। जिसे पार्टी कभी अपना सिपाही समझती थी, वह आज उसी के खिलाफ गुस्से का चेहरा बन चुका था।

गुस्से का स्वतःस्फूर्त विरोध पारंपरिक मोर्चे में बदल गया है। संयुक्त एक्शन कमेटी मानसा में धरना दे रही है। विपक्षी दल, किसान संगठन, पूर्व सैनिक, कर्मचारी संगठन, नागरिक समाज और सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर्स का हुजूम डेरा डाले हुए है। 15 अक्तूबर का ‘पंजाब बंद’ ऐसा मुजाहिदा था, जैसा किसान आंदोलन के बाद शायद ही कभी देखा गया हो। 19 अक्तूबर को मोर्चे ने आम आदमी पार्टी के सभी 92 विधायकों की चौखट तक अपने ‘लाहणपत्र पत्र’ (निंदा पत्र)

झोटा की लाइव फीड 13

अक्टूबर को खत्म हो गई।

लेकिन कहानी अब भी चल रही

है और हो सकता है कि इसका

अंत ‘आप’ को पसंद न आए

प्रदर्शनकारियों पर ‘समस्या सुलझाने’ का काम सौंपना

आरएसएस के 100 साल पूरे होने और मोहन भागवत के वार्षिक संबोधन में विरोधाभास

ए.जे. प्रबल

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने 20 अक्तूबर 2026 (दशहरा) को अपने शताब्दी समारोह का समापन किया। साल भर चले इस देशव्यापी आयोजन के दौरान संघ ने 4.61 लाख गांवों और 10 करोड़ शहरी परिवारों तक पहुंच बनाई (2025-26 की इसकी वार्षिक रिपोर्ट का दावा)। इस मौके पर एक स्मारक डाक टिकट और 100 रुपये का सिक्का भी जारी हुआ। विदेशों में मौजूद समर्थकों के बीच संघ प्रमुख मोहन भागवत खुद पहुंचे; अमेरिका, ब्रिटेन और कनाडा में प्रवासी भारतीयों को संबोधित करते हुए संगठन के मानवीय और गैर-सांप्रदायिक एजेंडे की बात की।

निस्संदेह, पहले की तुलना में कहीं ज्यादा मजबूत, समृद्ध और राजनीतिक तौर पर अधिक प्रभावशाली होने के बावजूद, आरएसएस के लिए अपना शताब्दी वर्ष उतना सुखद भी नहीं रहा। जून में ‘जेन जी’ के विरोध-प्रदर्शनों और चुनाव आयोग की मिलीभगत से भाजपा द्वारा ‘वोट चोरी’ करने के खिलाफ देशव्यापी विरोध-प्रदर्शनों ने उसे सकते में डाल दिया। अगस्त में मुंबई में भागवत जंतर-मंतर पर विरोध कर रहे “हमारे अपने युवाओं” की देशभक्ति की तारीफ करते दिखे, लेकिन विजयादशमी के भाषण में वह इन्हीं युवाओं को ‘भावुक, गुमराह’ और ‘विदेशी ताकतों के बहकावे’ में बता रहे थे। बक्रौल ‘द इंडियन एक्सप्रेस’ 2025 में भारत के चौथे सबसे शक्तिशाली भारतीयों, मोहन भागवत को विदेशों में विरोध-प्रदर्शन और देश के भीतर तीखे सवालों की बौछार झेलनी पड़ी। कर्नाटक की कांग्रेस सरकार ने आरएसएस को नोटिस भेजकर अपनी कानूनी स्थिति स्पष्ट करने, सदस्यता तथा फंडिंग का ब्योरा देने को कहा। विपक्ष के नेता राहुल गांधी ने कड़ा प्रहार करते हुए संघ को ‘जोकरों का झुंड’ और ‘संविधान-विरोधी, केवल पुरुषों वाला पंथ’ करार दिया।

हालांकि अभी स्पष्ट नहीं है कि भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में नितिन नंबीन का चयन पार्टी का फैसला था या संघ का, लेकिन शताब्दी वर्ष में बांकीपुर विधानसभा सीट पर मिली हार से निराश दोनों ही हैं। (यह सीट 1995 से ही भाजपा का गढ़ रही।) प्रधानमंत्री

नरेन्द्र मोदी के 75 पूरा होने से छह दिन पहले ही भागवत 75 वर्ष के हो गए, तो लोगों ने याद दिलाया जब 75 वर्ष में रिटायर होने को ‘वानप्रस्थ’ के हिन्दू आदर्श के रूप में पेश किया जाता था? भागवत अब कहते हैं कि उन्होंने तो कभी किसी से 75 वर्ष की आयु में रिटायर होने को नहीं कहा, और संघ जब भी उनसे कहेगा, वह पद छोड़ देंगे।

आरएसएस सांस्कृतिक संगठन होने का छद्म लगातार ओढ़े हुए है, एक ऐसा गैर-पंजीकृत एनजीओ जिसका सत्ताधारी दल से कोई लेना-देना नहीं। इसकी वार्षिक रिपोर्ट में इसकी संरचना, क्षेत्रीय पहचान और सदस्य संख्या पर कोई जानकारी नहीं होती; न दानदाताओं का जिक्र और न आय-व्यय का कोई ऑडिट। ‘ईमानदारी के इस आदर्श’ ने खुद वे पारदर्शिता मानक नहीं अपनाए, जिनकी दूसरों से अपेक्षा करता है?

भागवत जोर देते हैं कि हिन्दू धर्म के लिए किसी पंजीकरण की जरूरत नहीं। बाकी सारे एनजीओ नियम-बान्ध हैं, तो दुनिया का तथ्यांकथित सबसे बड़ा एनजीओ इससे छूट का दावा कैसे कर सकता है? यह कहना कि आएसएस ‘व्यक्तियों का एक समूह’ है और इसलिए अपने आय-व्यय का ब्योरा देने की



जरूरत नहीं, कानूनी किस्सागोइयों में सबसे अनोखे किस्से के ज्यादा कुछ नहीं है।

जहां हजारों एनजीओ के रजिस्ट्रेशन महज मामूली या निराधार वजहों से रद्द हो गए, ‘नियम उल्लंघन’ के आरोप में उन्हें विदेश से चंदा लेने से रोक दिया गया है, आरएसएस लगातार जांच-पड़ताल से बचता रहा है। इसलिए हैरानी नहीं, कि जब भागवत ने प्रदर्शनकारियों को कानून और संविधान के दायरे में रहने की सलाह दी, तो उन्हें तालियां नहीं हूटिंग मिली।

आरएसएस पर अपने व्यापक शोध के लिए चर्चित पत्रकार और लेखक धीरेंद्र के. झा इसे एक निजी, संविधान-विरोधी अर्धसैनिक संगठन बताते हैं। संघ अपने कार्यकर्ताओं को हथियारों का प्रशिक्षण देता है। भागवत तो ऑनरिकॉर्ड कह चुके हैं कि वे भारत की सीमाओं पर तीन दिन के भीतर (भारतीय सेना से भी तेजी से) एक सेना खड़ी कर सकते हैं। इसके कार्यकर्ता एक जैसी वर्दी पहनते हैं और विजयादशमी पर हथियारों की पूजा करते हैं। झा पूछते हैं कि भारत का कौन सा कानून ऐसे संगठन के पंजीकरण की इजाजत देता है?

ऐसे समय में जब दिल्ली में राष्ट्रीय ध्वज लहराने पर हिरासत मिल रही हो, जेल भेजा जा रहा हो, आरएसएस अपने लड़धारी कार्यकर्ताओं के साथ मार्च निकाल रहा है। कर्नाटक के गृहमंत्री प्रियांका खरगे ने एक पत्र का स्क्रीनशॉट पोस्ट किया, जिसमें संघ ने सरकार को अपने रूट मार्च की ‘सूचना’ देते हुए पुलिस से ‘सहयोग’ मांगा, सरकार से

‘आवश्यक इंतजाम’ करने को कहा।

खरगे ने लिखा: ‘जब आपमें से लाखों लोग एक ही दिन, एक ही समय कर्नाटक की सड़कों पर मार्च करने का इरादा रखते हैं, तो पुलिस विभाग को काफी तैयारियां करनी पड़ती हैं: पुलिसकर्मियों की तैनाती, परिवहन, भोजन, ट्रैफिक प्रबंधन, सुरक्षा इंतजाम और अन्य लॉजिस्टिक्स। इन सबके लिए योजना, जनशक्ति और सार्वजनिक संसाधनों की जरूरत होती है। इसलिए, कृपया निर्धारित आवेदन फॉर्म भरे, जरूरी विवरण दें और औपचारिक अनुमति मिलने का इंतजार करें।’ उनका यह व्यंग्यात्मक ट्वीट उस उलटबांसी का बयान है, जिसमें एक निजी एनजीओ सार्वजनिक सेवाओं की मांग तो करता है, लेकिन जनता के सूचना पाने के अधिकार को सिरे से नकार देता है।

*

भागवत ने कहा कि भारत में सत्ता परिवर्तन नहीं होगा। उनके अनुसार विरोध प्रदर्शनों की मौजूदा लहर “पश्चिम से आया एक ऐसा तूफान” है, जो “हर तरह की व्यवस्था, हर प्रकार की सभ्यता, हर शुभ चीज... सभी सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों” का विरोधी है; यह इन सबको नष्ट, दूषित और तबाह करना चाहता है।”

फ़ितरतन, उन्होंने इसके लिए ‘विदेशी हाथ’ को जिम्मेदार ठहराया: “पिछले कुछ दिनों से आ रही खबरों पर ही गौर कीजिए। फ्रांस में क्या हो रहा है? अल्बानिया में क्या



फोटो: जेपी इन्फोक्रेड

सुरक्षित रास्ता अपनाते हुए, आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत ने अपने विजयादशमी भाषण में नीट, सीबीएसई, ‘वोट चोरी’ या एसआईआर को लेकर हो रहे विरोध प्रदर्शनों का कोई जिक्र नहीं किया; (ऊपर) दशहरा के मौके पर आरएसएस का पथ संवतन

हो रहा है? बांग्लादेश में क्या हुआ? नेपाल में क्या हुआ? ये सभी घटनाएं सुनियोजित तरीके से रची गई हैं”।

विरोध-प्रदर्शनों पर भागवत के विचारों में कुछ खास नहीं, लेकिन जो बात सबसे ज्यादा चौंकारने वाली थी, यह कि उन्होंने समस्या सुलझाने की जिम्मेदारी प्रदर्शनकारियों पर ही डाल दी। कहा कि आंदोलनों का मकसद समाधान खोजना होना चाहिए, न कि समाज में दुश्मनी बढ़ाना या विभाजन पैदा करना। संघ प्रमुख सिरे से अनदेखी कर गए कि सरकार खुद समाज में विभाजन पैदा कर रही है और दुश्मनी को गहरा रही है।

नागरिकों, मजदूरों, युवाओं, महिलाओं, किसानों और छात्रों द्वारा किए गए इन विरोध-प्रदर्शनों की असल वजह क्या थी, इस पर कुछ नहीं कहा। न ‘वोट चोरी’ का मुद्दा, न ही एसआईआर, न सीबीएसई परीक्षा की धांधली और न ही ‘नीट’ की गड़बड़ी- भागवत ने इनमें से किसी पर भी ध्यान देना जरूरी नहीं समझा। हां, वह सोशल मीडिया द्वारा युवाओं तक बिना छनी जानकारी पहुंचाने की बुराईयों और इसे नियंत्रित एवं विनियमित करने की तत्काल जरूरत पर बात करते दिखे, लेकिन सरकार-पोषित मुख्यधारा के मीडिया की उस दुष्प्रभु मशीनरी पर मौन रहे, जो ज़हर फैलाने को कुख्यात है।

कुछ विश्लेषकों को उनके शब्दों में डर दिखाई दिया। लेखक और टिप्पणीकार आशुतोष ने ट्वीट किया: ‘भागवत का भाषण बेहतरीन उदाहरण है कि पूरा संगठन कितना

विवाद, पत्नी और करीबी सहयोगियों पर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों के बावजूद मान की छवि बेदाग ही थी। अकालियों में बिखराव, कांग्रेस की अंदरूनी कलह और ग्रामीण आधार की तलाश में भटकती भाजपा के बीच सियासी विमर्श पर सत्ता का नियंत्रण मजबूत दिख रहा था।

झोटा की हत्या ने पूरे ढांचे की दररें उजागर कर दीं - जो पार्टी सोशल मीडिया रील्स के दम पर खड़ी हुई, वह रील्स के जरिये ही घिर भी सकती है। पार्टी सिर्फ एक चेहरे पर टिकी है; जब मान की साख पर आंच आती है, तो झटके को संभालने वाली दूसरी कतार नहीं। सबसे बड़ी बात यह है कि पार्टी उन दो बुनियादी मुद्दों पर नाकाम साबित हुई जो सबसे अहम हैं-नशा और कानून-व्यवस्था।

हालिया इतिहास को देखकर पार्टी को फिक्र होनी चाहिए। पंजाब में सरकारें मतपेटियों से हारने से पहले सड़कों पर साख गंवाती हैं। ताकतवर नागरिक समाज और सोशल मीडिया का दायरा सरकारों को घुटनों पर लाता रहा है। 2015 में बरगाड़ी और बहबल कलां कांड ने अकाली दल की कमर तोड़ दी थी; पार्टी 2017 में 15 सीटों पर और 2022 में 3 सीटों पर सिमट गई। 2020-21 के किसान आंदोलन ने पारंपरिक दलों की विश्वसनीयता को इस कदर ध्वस्त किया कि ‘आप’ 117 में से 92 सीटें जीतकर सत्ता के शिखर पर पहुंच गई। आम आदमी पार्टी सड़कों पर उपजे गुस्से की पिछली बड़ी लहर पर सवार होकर सत्ता में आई थी। अब सवाल यह है कि क्या गुस्से की यह नई लहर उसे सत्ता से बाहर का रास्ता दिखा देगी।

अगर यह आंदोलन जारी रहा-मोर्चरी में पड़े शव, धरने पर बैठे पिता और हर स्मार्टफोन पर गुंजते वीडियो के साथ-तो भगवंत मान का वही हथ्र हो सकता है जो बरगाड़ी ने बादलों का किया था। झोटा का लाइव वीडियो 13 अक्तूबर को भले बंद हो गया हो, लेकिन सियासत का यह सीधा प्रसारण अब भी चल रहा है और इसका अंत शायद ‘आप’ को रास न आए। ■

नए नियमों की वजह से बंद हो जाएंगी हजारों पत्रिकाएं

83,500 की जगह निकल रहीं 31,650 पत्रिकाएं , अब इन पर भी संकट

अनिल चमड़िया

अपने यहां पत्रिकाएं कैसे बंद हो रही हैं, यह समझने से पहले यह जानना भी जरूरी है कि आखिर, यह खतरा कितना बड़ा है। 2024-25 में देश में लगभग 83,500 पत्रिकाएं निकलती थीं। 2025-26 में इनकी संख्या घटकर 31,650 हो गई है। सबसे ज्यादा खतरे में उन भाषाओं की पत्रिकाएं हैं जिन्हें बोलने वालों की संख्या कम है। जैसे, बोडो भाषा में 2022 में 18 पत्रिकाएं निकलती थीं। अब वहां केवल एक साप्ताहिक न्यूजपेपर बचा है। 2022-23 में डोगरी में कम-से-कम 8 पत्र-पत्रिकाएं निकलती थीं। अब कोई नहीं निकलती। कश्मीर में पहले कम-से-कम चार वीकली निकलती थीं, अब केवल एक बची है।

दरअसल, प्रेस एवं पंजीकरण कानून में हुए संशोधन के बाद न्यूजपेपर की परिभाषा बदल गई है। उसमें केवल डेली न्यूजपेपर और वीकली न्यूजपेपर रह गए हैं। इस परिभाषा से मंथली न्यूजपेपर या पत्रिका, त्रैमासिक, छमाही और सालाना पत्रिकाओं को बाहर कर दिया गया है।

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने बताया भी है कि इन्हीं नियमों की वजह से पिछले साल 88,000 पत्र-पत्रिकाओं के टाइटल (नाम-शीर्षक) रह कर दिए गए क्योंकि इन्होंने 2023 में बनाए गए प्रेस और पंजीकरण, यानी रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धारा 11 का उल्लंघन किया है। दरअसल, धारा 11 में प्रेस रजिस्ट्रार जनरल को ये अधिकार दिए

गए हैं कि वह तीस दिनों से कम नहीं बल्कि एक सौ अस्सी दिनों से अधिक की अवधि के लिए, एक आवधिक (पीरीयॉडिक्स) के पंजीकरण प्रमाण पत्र को निलंबित कर सकता है।

असली सवाल यह है कि जो बची हुई 31,650 पत्र-पत्रिकाएं हैं, उनमें से भी कितनी बच पाएंगी। सरकार ने उन पर भी पोस्ट ऑफिस के कानून के जरिये ताला

बंद कर दिया है। पत्रिकाएं चाहे जहां से भी निकलती रही हैं, वे स्टॉलों पर बिकती थीं। कोविड के बाद से और विभिन्न सरकारी दबावों के कारण पत्र-पत्रिकाओं की अधिकतर दुकानें, स्टॉल बंद हो गए। देश की यूनिवर्सिटी तक में ऐसी दुकानें बंद कर दी गईं। स्टेशनों पर एच व्हीलर्स के जरिये किताबों के साथ पत्र-पत्रिकाएं बिकती थीं। उनकी शकल ऐसी कर दी गई है कि वह परचून या दवा की दुकान लगती है। किसी की इच्छा भी हो, तो वह पत्रिकाएं नहीं खरीद सकता।

इसलिए अब एकमात्र तरीका यह है कि

पत्र-पत्रिकाओं के लिए इस्तेमाल की जाने वाली हर चीज पर तो टैक्स पहले से ही ज्यादा थे, मोदी सरकार के समय में ये और बढ़ गए हैं। अब सरकार ने पोस्ट ऑफिस कानून के जरिये भी इन पर ताला लगाने की तैयारी कर ली है

गए हैं कि वह तीस दिनों से कम नहीं बल्कि एक सौ अस्सी दिनों से अधिक की अवधि के लिए, एक आवधिक (पीरीयॉडिक्स) के पंजीकरण प्रमाण पत्र को निलंबित कर सकता है।

असली सवाल यह है कि जो बची हुई 31,650 पत्र-पत्रिकाएं हैं, उनमें से भी कितनी बच पाएंगी। सरकार ने उन पर भी पोस्ट ऑफिस के कानून के जरिये ताला

बंद कर दिया है। पत्रिकाएं चाहे जहां से भी निकलती रही हैं, वे स्टॉलों पर बिकती थीं। कोविड के बाद से और विभिन्न सरकारी दबावों के कारण पत्र-पत्रिकाओं की अधिकतर दुकानें, स्टॉल बंद हो गए। देश की यूनिवर्सिटी तक में ऐसी दुकानें बंद कर दी गईं। स्टेशनों पर एच व्हीलर्स के जरिये किताबों के साथ पत्र-पत्रिकाएं बिकती थीं। उनकी शकल ऐसी कर दी गई है कि वह परचून या दवा की दुकान लगती है। किसी की इच्छा भी हो, तो वह पत्रिकाएं नहीं खरीद सकता।

इसलिए अब एकमात्र तरीका यह है कि

गए हैं कि वह तीस दिनों से कम नहीं बल्कि एक सौ अस्सी दिनों से अधिक की अवधि के लिए, एक आवधिक (पीरीयॉडिक्स) के पंजीकरण प्रमाण पत्र को निलंबित कर सकता है।

असली सवाल यह है कि जो बची हुई 31,650 पत्र-पत्रिकाएं हैं, उनमें से भी कितनी बच पाएंगी। सरकार ने उन पर भी पोस्ट ऑफिस के कानून के जरिये ताला

बंद कर दिया है। पत्रिकाएं चाहे जहां से भी निकलती रही हैं, वे स्टॉलों पर बिकती थीं। कोविड के बाद से और विभिन्न सरकारी दबावों के कारण पत्र-पत्रिकाओं की अधिकतर दुकानें, स्टॉल बंद हो गए। देश की यूनिवर्सिटी तक में ऐसी दुकानें बंद कर दी गईं। स्टेशनों पर एच व्हीलर्स के जरिये किताबों के साथ पत्र-पत्रिकाएं बिकती थीं। उनकी शकल ऐसी कर दी गई है कि वह परचून या दवा की दुकान लगती है। किसी की इच्छा भी हो, तो वह पत्रिकाएं नहीं खरीद सकता।

इसलिए अब एकमात्र तरीका यह है कि

गए हैं कि वह तीस दिनों से कम नहीं बल्कि एक सौ अस्सी दिनों से अधिक की अवधि के लिए, एक आवधिक (पीरीयॉडिक्स) के पंजीकरण प्रमाण पत्र को निलंबित कर सकता है।

असली सवाल यह है कि जो बची हुई 31,650 पत्र-पत्रिकाएं हैं, उनमें से भी कितनी बच पाएंगी। सरकार ने उन पर भी पोस्ट ऑफिस के कानून के जरिये ताला

बंद कर दिया है। पत्रिकाएं चाहे जहां से भी निकलती रही हैं, वे स्टॉलों पर बिकती थीं। कोविड के बाद से और विभिन्न सरकारी दबावों के कारण पत्र-पत्रिकाओं की अधिकतर दुकानें, स्टॉल बंद हो गए। देश की यूनिवर्सिटी तक में ऐसी दुकानें बंद कर दी गईं। स्टेशनों पर एच व्हीलर्स के जरिये किताबों के साथ पत्र-पत्रिकाएं बिकती थीं। उनकी शकल ऐसी कर दी गई है कि वह परचून या दवा की दुकान लगती है। किसी की इच्छा भी हो, तो वह पत्रिकाएं नहीं खरीद सकता।

इसलिए अब एकमात्र तरीका यह है कि

गए हैं कि वह तीस दिनों से कम नहीं बल्कि एक सौ अस्सी दिनों से अधिक की अवधि के लिए, एक आवधिक (पीरीयॉडिक्स) के पंजीकरण प्रमाण पत्र को निलंबित कर सकता है।

असली सवाल यह है कि जो बची हुई 31,650 पत्र-पत्रिकाएं हैं, उनमें से भी कितनी बच पाएंगी। सरकार ने उन पर भी पोस्ट ऑफिस के कानून के जरिये ताला

बंद कर दिया है। पत्रिकाएं चाहे जहां से भी निकलती रही हैं, वे स्टॉलों पर बिकती थीं। कोविड के बाद से और विभिन्न सरकारी दबावों के कारण पत्र-पत्रिकाओं की अधिकतर दुकानें, स्टॉल बंद हो गए। देश की यूनिवर्सिटी तक में ऐसी दुकानें बंद कर दी गईं। स्टेशनों पर एच व्हीलर्स के जरिये किताबों के साथ पत्र-पत्रिकाएं बिकती थीं। उनकी शकल ऐसी कर दी गई है कि वह परचून या दवा की दुकान लगती है। किसी की इच्छा भी हो, तो वह पत्रिकाएं नहीं खरीद सकता।

इसलिए अब एकमात्र तरीका यह है कि

किताबों से डरती सत्ता और उसकी राजनीति

जिस राजनीति को अपने सच पर भरोसा होता है, उसे किताबों से डरने की जरूरत नहीं पड़ती

शैलेंद्र चौहान

किताबों पर हमला विचार की स्वतंत्रता पर हमला है। पश्चिम बंगाल में दुर्गा पूजा के दौरान माकपा और अन्य वामपंथी संगठनों के पुस्तक स्टालों पर तोड़फोड़, आगजनी और उन्हें हटाने की कोशिशों ने राजनीति का ऐसा रूप उजागर किया है, जिसमें असहमति के लिए सार्वजनिक जीवन में जगह लगातार संकुचित की जा रही है। बारासात में पुस्तक स्टालों में तोड़फोड़ और बिजपुर में एक स्टाल में आग लगाए जाने की खबरें हैं। कोलकाता के जादवपुर में स्टाल हटाने को लेकर भी विवाद सामने आया है। वामपंथी दलों ने हमलों के लिए भाजपा समर्थकों पर आरोप लगाए हैं; इन आरोपों की जिम्मेदारी जांच से तय होनी है। लेकिन घटनाओं का व्यापक राजनीतिक संदर्भ विचारणीय है।

दुर्गा पूजा बंगाल का केवल धार्मिक आयोजन नहीं, एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक उत्सव भी है। इसके पंडालों के आसपास लगने वाले पुस्तक स्टालों की परंपरा दशकों पुरानी है। पुस्तक स्टाल विचारों के प्रसार का माध्यम होते हैं। उनका महत्व इसमें भी है कि वे पाठकों अपनी मान्यताओं से बाहर निकलकर दूसरे विचारों से परिचित होने का अवसर देते हैं।

लोकतंत्र में किसी राजनीतिक दल को अपने विचार प्रस्तुत करने का अधिकार केवल इसलिए नहीं छीना जा सकता कि वे आयोजकों या सत्तारूढ़ दल की विचारधारा से मेल नहीं खाते। विचारों का मुकाबला विचारों से होना चाहिए। धार्मिक आस्था, राजनीतिक निष्ठा या वैचारिक असहमति को सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश की कसौटी बनाना लोकतांत्रिक नागरिकता की अवधारणा के विरुद्ध है। यह अराजकता है।

इस विवाद का एक गंभीर पहलू वह राजनीतिक दृष्टिकोण है जो धार्मिक पहचान को सार्वजनिक जीवन में स्वीकार्यता की शर्त बनाना चाहता है। जब यह कहा जाता है कि जो लोग किसी धार्मिक अनुष्ठान में भाग नहीं लेते, तिलक नहीं लगाते या किसी विशेष परंपरा को स्वीकार नहीं करते, उन्हें दुर्गा पूजा के पंडालों के पास पुस्तक स्टाल लगाने का अधिकार क्यों मिले, तब प्रश्न केवल वामपंथ का नहीं रह जाता।

प्रश्न यह है कि क्या सार्वजनिक संस्कृति में भागीदारी के लिए धार्मिक आचरण का प्रमाण देना अनिवार्य होगा? भारत का संविधान नागरिक को आस्था रखने, उसका पालन करने, उससे असहमत होने और किसी धर्म का पालन न करने की स्वतंत्रता देता है। धार्मिक उत्सव किसी एक राजनीतिक विचारधारा की संपत्ति नहीं हैं और न ही उनमें भागीदारी का अधिकार वैचारिक समर्पण पर निर्भर होना चाहिए।

पुस्तकों से असहज होने वाली राजनीति की समस्या इससे भी गहरी है। पुस्तकें किसी एक विचारधारा की प्रतिनिधि नहीं होतीं। पुस्तक का मूल स्वभाव ही यह है कि वह एक से अधिक दृष्टियों के लिए जगह बनाती है। इसलिए स्वतंत्र विचार से भयभीत राजनीति को उन पुस्तकों से विशेष परेशानी होती है जो उसके बनाए नैरेटिव के बाहर खड़ी होकर सवाल करती हैं।

किताबों के विरुद्ध राजनीति का इतिहास किसी एक देश या समय तक सीमित नहीं है। प्राचीन चीन में सम्राट चिन शी हुआंग के शासनकाल में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में पुस्तकों को जलाने और विद्वानों को दंडित करने की घटनाएं दर्ज हैं।



कोलकाता में बुक स्टॉलों को ध्वस्त करना बताया है कि सरकार को विचारों की स्वतंत्रता से खतरा लगता है

चीन की उस घटना को अक्सर इस बात के उदाहरण के रूप में याद किया जाता है कि जब शासक विचारों पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता है, तो सबसे पहले वह स्मृति और ज्ञान पर हमला करता है।

मध्यकालीन यूरोप में धार्मिक संस्थाओं द्वारा निषिद्ध पुस्तकों की सूचियां तैयार की गईं। अनेक लेखकों और वैज्ञानिकों को अपने विचारों के कारण मुकदमों, प्रतिबंधों और दंड का सामना करना पड़ा। गैलिलियो को पृथ्वी की गति संबंधी वैज्ञानिक निष्कर्षों के कारण धार्मिक सत्ता के सामने झुकना पड़ा। यह केवल विज्ञान बनाम धर्म का विवाद नहीं था; यह उस मानसिकता का उदाहरण था जो स्थापित सत्ता के विरुद्ध उठने वाले प्रश्नों को अपराध मानती है।

1933 में नाज़ी जर्मनी में विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक स्थानों पर पुस्तकों की सामूहिक होली जलाई गईं। यहूदियों, समाजवादियों, कम्युनिस्टों, उदारवादियों और ऐसे लेखकों की किताबें नष्ट की गईं जिन्हें नाज़ी विचारधारा के लिए असुविधाजनक माना गया। बर्लिन सहित अनेक शहरों में आयोजित इन अभियानों में पुस्तकों को जलाना एक प्रतीकात्मक राजनीतिक अनुष्ठान बन गया। नाज़ी प्रचार मंत्री जोसेफ गोएबेल्स ने इसे कथित रूप से "अशुद्ध" विचारों के विरुद्ध अभियान बताया। लेकिन इतिहास ने दिखाया कि किताबों के बाद मनुष्यों को निशाना बनाया गया। विचारों को नष्ट करने की कोशिश अंततः समाज के बड़े हिस्से के विनाश में बदल गई।

1976 में लेबनान के गृहयुद्ध के दौरान बेरूत की



कोलकाता में बुक स्टॉलों को ध्वस्त करना बताया है कि सरकार को विचारों की स्वतंत्रता से खतरा लगता है

चीन की उस घटना को अक्सर इस बात के उदाहरण के रूप में याद किया जाता है कि जब शासक विचारों पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता है, तो सबसे पहले वह स्मृति और ज्ञान पर हमला करता है।

मध्यकालीन यूरोप में धार्मिक संस्थाओं द्वारा निषिद्ध पुस्तकों की सूचियां तैयार की गईं। अनेक लेखकों और वैज्ञानिकों को अपने विचारों के कारण मुकदमों, प्रतिबंधों और दंड का सामना करना पड़ा। गैलिलियो को पृथ्वी की गति संबंधी वैज्ञानिक निष्कर्षों के कारण धार्मिक सत्ता के सामने झुकना पड़ा। यह केवल विज्ञान बनाम धर्म का विवाद नहीं था; यह उस मानसिकता का उदाहरण था जो स्थापित सत्ता के विरुद्ध उठने वाले प्रश्नों को अपराध मानती है।

1933 में नाज़ी जर्मनी में विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक स्थानों पर पुस्तकों की सामूहिक होली जलाई गईं। यहूदियों, समाजवादियों, कम्युनिस्टों, उदारवादियों और ऐसे लेखकों की किताबें नष्ट की गईं जिन्हें नाज़ी विचारधारा के लिए असुविधाजनक माना गया। बर्लिन सहित अनेक शहरों में आयोजित इन अभियानों में पुस्तकों को जलाना एक प्रतीकात्मक राजनीतिक अनुष्ठान बन गया। नाज़ी प्रचार मंत्री जोसेफ गोएबेल्स ने इसे कथित रूप से "अशुद्ध" विचारों के विरुद्ध अभियान बताया। लेकिन इतिहास ने दिखाया कि किताबों के बाद मनुष्यों को निशाना बनाया गया। विचारों को नष्ट करने की कोशिश अंततः समाज के बड़े हिस्से के विनाश में बदल गई।

1976 में लेबनान के गृहयुद्ध के दौरान बेरूत की



कोलकाता में बुक स्टॉलों को ध्वस्त करना बताया है कि सरकार को विचारों की स्वतंत्रता से खतरा लगता है

चीन की उस घटना को अक्सर इस बात के उदाहरण के रूप में याद किया जाता है कि जब शासक विचारों पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता है, तो सबसे पहले वह स्मृति और ज्ञान पर हमला करता है।

मध्यकालीन यूरोप में धार्मिक संस्थाओं द्वारा निषिद्ध पुस्तकों की सूचियां तैयार की गईं। अनेक लेखकों और वैज्ञानिकों को अपने विचारों के कारण मुकदमों, प्रतिबंधों और दंड का सामना करना पड़ा। गैलिलियो को पृथ्वी की गति संबंधी वैज्ञानिक निष्कर्षों के कारण धार्मिक सत्ता के सामने झुकना पड़ा। यह केवल विज्ञान बनाम धर्म का विवाद नहीं था; यह उस मानसिकता का उदाहरण था जो स्थापित सत्ता के विरुद्ध उठने वाले प्रश्नों को अपराध मानती है।

1933 में नाज़ी जर्मनी में विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक स्थानों पर पुस्तकों की सामूहिक होली जलाई गईं। यहूदियों, समाजवादियों, कम्युनिस्टों, उदारवादियों और ऐसे लेखकों की किताबें नष्ट की गईं जिन्हें नाज़ी विचारधारा के लिए असुविधाजनक माना गया। बर्लिन सहित अनेक शहरों में आयोजित इन अभियानों में पुस्तकों को जलाना एक प्रतीकात्मक राजनीतिक अनुष्ठान बन गया। नाज़ी प्रचार मंत्री जोसेफ गोएबेल्स ने इसे कथित रूप से "अशुद्ध" विचारों के विरुद्ध अभियान बताया। लेकिन इतिहास ने दिखाया कि किताबों के बाद मनुष्यों को निशाना बनाया गया। विचारों को नष्ट करने की कोशिश अंततः समाज के बड़े हिस्से के विनाश में बदल गई।

1976 में लेबनान के गृहयुद्ध के दौरान बेरूत की



कोलकाता में बुक स्टॉलों को ध्वस्त करना बताया है कि सरकार को विचारों की स्वतंत्रता से खतरा लगता है

चीन की उस घटना को अक्सर इस बात के उदाहरण के रूप में याद किया जाता है कि जब शासक विचारों पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता है, तो सबसे पहले वह स्मृति और ज्ञान पर हमला करता है।

मध्यकालीन यूरोप में धार्मिक संस्थाओं द्वारा निषिद्ध पुस्तकों की सूचियां तैयार की गईं। अनेक लेखकों और वैज्ञानिकों को अपने विचारों के कारण मुकदमों, प्रतिबंधों और दंड का सामना करना पड़ा। गैलिलियो को पृथ्वी की गति संबंधी वैज्ञानिक निष्कर्षों के कारण धार्मिक सत्ता के सामने झुकना पड़ा। यह केवल विज्ञान बनाम धर्म का विवाद नहीं था; यह उस मानसिकता का उदाहरण था जो स्थापित सत्ता के विरुद्ध उठने वाले प्रश्नों को अपराध मानती है।

1933 में नाज़ी जर्मनी में विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक स्थानों पर पुस्तकों की सामूहिक होली जलाई गईं। यहूदियों, समाजवादियों, कम्युनिस्टों, उदारवादियों और ऐसे लेखकों की किताबें नष्ट की गईं जिन्हें नाज़ी विचारधारा के लिए असुविधाजनक माना गया। बर्लिन सहित अनेक शहरों में आयोजित इन अभियानों में पुस्तकों को जलाना एक प्रतीकात्मक राजनीतिक अनुष्ठान बन गया। नाज़ी प्रचार मंत्री जोसेफ गोएबेल्स ने इसे कथित रूप से "अशुद्ध" विचारों के विरुद्ध अभियान बताया। लेकिन इतिहास ने दिखाया कि किताबों के बाद मनुष्यों को निशाना बनाया गया। विचारों को नष्ट करने की कोशिश अंततः समाज के बड़े हिस्से के विनाश में बदल गई।

1976 में लेबनान के गृहयुद्ध के दौरान बेरूत की

आक्रमणों, विशेषकर बख्तिखार खिलजी से जुड़ी ऐतिहासिक परंपराओं में, पुस्तकालयों के जलाए जाने का उल्लेख मिलता है। इतिहासकार इन घटनाओं के विवरण और तिथियों पर बहस करते रहे हैं, लेकिन यह निर्विवाद है कि नालंदा का पतन केवल एक भवन या परिसर का विनाश नहीं था। यह ज्ञान की एक जीवंत परंपरा पर प्रहार था।

नालंदा का उदाहरण यह भी बताता है कि किसी विश्वविद्यालय या पुस्तकालय का महत्व उसकी इमारत से कहीं अधिक होता है। वहां संचित ग्रंथों के साथ संवाद की परंपरा, प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता और विभिन्न क्षेत्रों से आए विद्वानों का सह-अस्तित्व जुड़ा होता है। जब ऐसी संस्था नष्ट होती है, तो केवल पुस्तकें नहीं जलतीं; ज्ञान के बीच बने संबंध, शोध की निरंतरता और आने वाली पीढ़ियों की संभावनाएं भी नष्ट होती हैं।

दिल्ली की केन्द्रीय सचिवालय लाइब्रेरी का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। लगभग 135 वर्ष पुरानी इस संस्था में साढ़े आठ लाख से अधिक पुस्तकें और दस्तावेज हैं। सेंट्रल विस्टा पुनर्विकास के दौरान इसके लिए पर्याप्त और स्थायी स्थान की व्यवस्था को लेकर गंभीर सवाल उठे हैं।

बंगाल के पुस्तक स्टालों पर हमलों और दिल्ली के पुस्तकालय के पुनर्वास की समस्या भविष्य का एक संकेत है। एक ओर कथित राजनीतिक हिंसा और वैचारिक असहिष्णुता का प्रश्न है, दूसरी ओर सार्वजनिक संस्थान के संरक्षण और सरकारी प्राथमिकताओं का। नालंदा का विनाश एक ऐतिहासिक घटना है, जबकि आज पुस्तकालयों और पुस्तक स्टालों से जुड़े प्रश्न हमारे वर्तमान लोकतंत्र की परीक्षा हैं। फिर भी इन सभी प्रसंगों में एक बुनियादी सवाल साझा है: हमारे सार्वजनिक जीवन में किताबों, इतिहास और स्वतंत्र चिंतन का वास्तविक स्थान क्या है?

लोकतंत्र की परीक्षा इस बात से नहीं होती कि सत्ता अपने समर्थकों के विचारों को कितनी जगह देती है। उसकी परीक्षा इस बात से होती है कि विरोधी विचारों के लिए कितनी जगह सुरक्षित रहती है। किसी पुस्तक को प्रतिबंधित करना, किसी पुस्तकालय को उपेक्षित छोड़ना या किसी वैचारिक समूह के पुस्तक स्टाल को बलपूर्वक हटाना अलग-अलग कार्रवाइयां हैं, लेकिन जब इनके पीछे असहमति को सीमित करने की प्रवृत्ति काम करती है, तो लोकतांत्रिक समाज को सतर्क होना चाहिए।

किसी विचार का उत्तर पुस्तक जलाकर नहीं, बेहतर पुस्तक लिखकर दिया जा सकता है। किसी इतिहास का प्रतिवाद अभिलेख नष्ट करके नहीं, अधिक प्रमाण और गंभीर शोध के माध्यम से किया जा सकता है। किसी राजनीतिक आलोचना का जवाब हिंसा नहीं, सार्वजनिक बहस है।

वे दुनिया की सारी किताबें जला देने की कल्पना कर सकते हैं और अपना झूठ बेचते रह सकते हैं। मगर ज्ञान का संसार किसी एक पुस्तक स्टाल, पुस्तकालय या संस्थान तक सीमित नहीं है। विचारों को दबाने की कोशिश अक्सर उनके प्रसार की नई जमीन तैयार करती है। नालंदा की राख से लेकर नाज़ी जर्मनी की पुस्तक-दहन सभाओं और आज के पुस्तक स्टालों तक इतिहास यही बताता है कि सत्ता की आग कागज को जला सकती है, प्रश्नों को नहीं।

जिस राजनीति को अपने सच पर भरोसा होता है, उसे किताबों से डरने की जरूरत नहीं पड़ती। ■



बाघ अभयारण्य का अगला निशाना कुंभलगढ़

पर्यटन के लालच में कुंभलगढ़ में बाघ अभयारण्य तो बना देंगे लेकिन तेंदुओं के इस ‘घर’ में इससे जो बदलाव होंगे, उससे इलाके का पूरा रहन-सहन ही बदल जाएगा

प्रीति डेविड

फुआराम एक हाथ से छटपटाते हुए मेमने को मजबूती से पकड़ते हैं, जबकि दूसरा हाथ धीरे से उसके गले तक पहुंचता है। “देखिए, काटने के निशान,” वह कहते हैं। 65 वर्षीय चरवाहे फुआराम इसके बाद बकरी के मिमियाते हुए बच्चे को छोड़ देते हैं और ऊपर की ओर देखते हुए कहते हैं, “यहीं तेंदुए ने दांत लगाया था, जब मैंने लाठी से पीटकर उसे भगाया। अब सोचिए, अगर वह बाघ होता, तो क्या होता।” उनकी पत्नी मात्रा (55 साल) जवाब का इंतजार नहीं करती: “ये बकरी का बच्चा तो नहीं ही बचता, ये भी नहीं बचते।”

शाम हो चुकी है और फुआराम अभी-अभी रामजी गुड़ा ढाणी लौटे हैं। यह करीब 70 परिवारों की बस्ती है, जहां देवासी, रबारी, गरासिया और भील आदिवासी रहते हैं। वे अपनी 50 बकरियों को चराने ले गए थे। उनका घर कुंभलगढ़ वन्यजीव अभयारण्य (केडब्ल्यूएलएस) से सटा हुआ है, जहां चरवाहे नियमित रूप से अपने मवेशियों और ऊंटों को चराने के लिए ले जाते हैं। राजस्थान के पाली जिले में खेती योग्य जमीन बहुत कम है और पशुपालन उनके लिए आजीविका का सहारा है। यह दंपति साल में करीब 10 बकरियां बेचकर लगभग एक लाख रुपये कमा लेता है। रामजी गुड़ा ढाणी के ज्यादातर परिवार काम की तलाश में नियमित रूप से पलायन भी करते हैं। इस दंपति के बेटे भी ऐसा ही करते हैं और घर पैसे भेजते हैं, ताकि चूल्हा जलता रहे।

फुआराम का तेंदुए से सामना कोई असामान्य घटना नहीं है। यह शुष्क, पर्णपाती झाड़ीदार वन इस चित्तीदार जीव यानी तेंदुए का घर है। शेर और बाघ इस इलाके में आए भी नहीं थे, उससे बहुत पहले प्राचीन ग्रंथों में यहां तेंदुओं की मौजूदगी का उल्लेख मिलता है। भारत में पाए जाने वाले 13,874 तेंदुओं में से 721 राजस्थान में हैं (स्टेटस ऑफ़ लेपर्ड, 2022)।

इसलिए फुआराम जैसे स्थानीय चरवाहे इनसे अच्छी तरह परिचित हैं। वे उसे बधेरा, चीत्रो या सिंह जैसे कई नामों से पुकारते हैं। मुस्कराते फुआराम अपनी मातृभाषा मारवाड़ी में कहते हैं “लाठी मजबूती से लहराकर जोर से चिल्लाना आम तौर पर तेंदुए को भगाने के लिए काम्री होता है।” हालांकि, उनका कहना है कि चरवाहे हमेशा अपने जानवरों को बचा ही लें, जरूरी नहीं। ऐसे में वन विभाग से मिलने वाला मुआवजा मददगार साबित होता है। लेकिन आसपास बाघ की मौजूदगी तो हालात ही बदल देगी। इससे रामजी गुड़ा ढाणी के चरवाहे और जंगल के छोटे-मोटे और उत्पादों पर निर्भर उनके परिवार बेहद चिंतित हैं। मात्रा पृथ्वी हैं: “यहां बाघ लाए जाने से हमें क्या फ़ायदा है? वे जंगल को हमारे लिए बंद कर देंगे और बाघ खुले में घूमेगा।”

*
कुंभलगढ़ का वन क्षेत्र झाड़ीदार भूमि की एक पतली पट्टी जैसा है, जिसके साथ छोटी पहाड़ियों के बीच बनी संकरी



हीरा राम सोपाजी से लेकर हेमीबाई, महेन्द्र, कान्हाराम, भीकाराम और रामजी गुड़ा ढाणी की चिंता यही है कि आगे इनका जीवन कैसा होगा और इन्हें बदले में जमीन कहां मिलेगी। इनके मवेशी कहां चरने जाएंगे

घाटियों से कुछेक धाराएं बहती हैं। वर्ष 1971 में इसे वन्यजीव अभयारण्य (केडब्ल्यूएलएस) घोषित किया गया था, जो 610 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। जंगल के सबसे ऊंचे स्थान पर स्थित 500 वर्ष पुराना एक क़िला पत्थर की अपनी विशाल दीवारों के साथ नीचे के क्षेत्र पर नज़र रखता है।

आदिवासी, चरवाहे और अन्य समुदायों के परिवार सदियों से यहां रहते आए हैं। वे जलावन की लकड़ी और फल के लिए जंगल पर निर्भर रहे हैं, अपने जानवरों को जंगल में चराते हैं और ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़ों पर खेती करते हैं।

जंगल की सीमा पर बसे गुड़ा जतन के सरपंच पीसूलाल मेघवाल कहते हैं, “वन विभाग पहले हमें जंगल की आग बुझाने को बुलाया करता थाहमारे बीच लेन-देन (आपसी सम्मान) का रिश्ता था।”

लेकिन करीब दो दशक पहले स्थिति बदलने लगी, जब जंगल में बाघ लाए जाने की पहली चर्चाएं सामने आईं। पहले तो ग्रामीण हैरान हुए, फिर उनकी हैरानी निराशा और उसके बाद गुस्से में बदल गई।

मेघवाल कहते हैं, “बाघ लाने या इसे बाघ अभयारण्य बनाने पर हमसे कभी सलाह नहीं ली गई। वह दलित हैं और गांव तथा जिला स्तर पर आठ बार चुनाव लड़ चुके हैं, छह में जीत हासिल की है। वह अपने अधिकारों से परिचित हैं। उनका कहना है कि वन अधिकार अधिनियम, 2006 (अध्याय III, धारा 4(2)(ई) के अनुसार किसी परियोजना को तभी आगे बढ़ाया जा सकता है, जब ग्राम सभा इसकी लिखित अनुशंसा करे। लेकिन यहां तो “वन अधिकारियों ने 2010 से अब तक हमारे साथ एक भी बैठक नहीं की है।” गौरतलब है कि मेघवाल ने शुरुआत में निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ा था और लगभग 15 वर्ष पहले भाजपा में शामिल हुए।

राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए) ने कुंभलगढ़ वन्यजीव अभयारण्य को टोडागढ़-रावली अभयारण्य के साथ मिलाकर, मोटा-मोटी अनुमान के अनुसार लगभग 1,300 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में कुंभलगढ़ बाघ अभयारण्य बनाने का प्रस्ताव दिया है। बाघ अभयारण्य भारत में सबसे कड़े संरक्षण वाले संरक्षित वन क्षेत्रों में से एक होता है। इसमें किलेबंद संरक्षण का मॉडल अपनाया जाता है, और मनुष्यों का रहना प्रतिबंधित होता है। इसका अर्थ यह कि इसके भीतर के लगभग 51 गांव, किनारे के 250 गांव और तमाम अन्य बस्तियां बाघ के लिए खाली कराई जा सकती हैं। इससे कुंभलगढ़ में जंगल पर आश्रित आजीविकाएं और जमीन से जुड़े सांस्कृतिक रिश्ते समाप्त हो सकते हैं।

*
जंगल के भीतर एक बंद फाटक के पीछे से पांच किलोमीटर लंबी कंकरीली, कच्ची सड़क गुज़रती है। यह सड़क घुमावदार रास्ते से होते हुए खरनी टोकरी पहुंचती है। यह सीढ़ीनुमा खेतों के बीच 15 कच्चे घरों की एक छोटी बस्ती है। यहां न बिजली है, न पानी। प्राथमिक विद्यालय 15 वर्ष पहले बंद हो चुका है और मानसून के दौरान तेज़ बहती



धाराओं के कारण बस्ती का संपर्क बाक़ी दुनिया से कट जाता है। यहां रहने वाले आदिवासी, जिनमें से ज्यादातर साक्षर नहीं हैं, कहते हैं कि उनके पास ज़मीन के सही कागज़ात नहीं हैं, और इसलिए वे भूमि पर अपने अधिकारों को लेकर अनिश्चित हैं, और सरकार द्वारा ठगे जाने को लेकर आशंकित हैं।

“धीरे-धीरे समय के साथ, जिन लोगों के पास बाहर की ज़मीन के पट्टे थे, वे यहां से चले गए. यह ज़मीन वनभूमि है और हमें अपने अधिकार नहीं मिले हैं,” 50 वर्षीय भीकाराम कहते हैं. उनके पूर्वज यहां रहते और खेती करते आए हैं. उनका कहना है कि उन्हें आवास जैसी सरकारी योजनाओं का लाभ लेने की भी अनुमति नहीं है।

कुछ साल पहले सरकारी अधिकारी खरनी टोकरी पहुंचे थे और उन्होंने वहां रहने वाले भील आदिवासियों से कहा कि बाघ अभयारण्य बनाने के लिए उनकी बस्ती को हटाना

पड़ेगा। पिछले साल उन्हें वन चौकी कार्यालय में बुलाया गया। सभी पुरुष वहां गए थे। “हम महिलाओं को सीधा-सीधा यह सब सुनने-जानने का मौक़ा कहां मिलता है?” भीकाराम की पत्नी हेमीबाई पृथ्वी हैं।

भीकाराम बताते हैं कि अधिकारियों ने उनसे कहा कि उन्हें यहां से जाना होगा। “हमने कहा कि हमें ज़मीन चाहिए। उन्होंने कहा कि (नज़दीक के) घाणेशाव पंचायत में तुम्हें बसाने के लिए ज़मीन नहीं है, इसलिए (निर्धारित) 15 लाख रुपये का नक़द मुआवज़ा दिया जाएगा।”

पता चला कि पंचायत की सड़क के पास एक बीघा (आधे एकड़ से कुछ अधिक) समतल ज़मीन 40 लाख रुपये में बिक रही है और अंदर की ओर जाने पर इसकी क़ीमत कुछ लाख ही रुपये कम है। स्थानीय लोगों ने बताया कि यहां ज़मीन के टुकड़ों की क़ीमत अब करोड़ों रुपये में पहुंच गई है।

यहां से एक घंटे की दूरी पर, जंगल के दूसरे छोर पर स्थित गरासिया कॉलोनी में हमारी मुलाकात हीरा राम सोपाजी से हुई। वह इलाके में रहने वाली पांचवीं पीढ़ी के निवासी हैं। चूहों ने उनके ज़मीन से जुड़े कागज़ात और पट्टे कुतर डाले। वह हमें अपने कागज़ात दिखाते हैं और कहते हैं कि उनके पास मौजूद पट्टों में उनकी ज़मीन का रकबा भी वास्तविक स्वामित्व से कम दर्ज है। ये आदिवासी किसान अपनी कुछ बीघा ज़मीन पर परिवार के खाने के लिए मक्का और गेहूं उगाते हैं, और साथ ही दिहाड़ी मजदूरी की तलाश में बाहर भी जाते हैं। अपने अध-पक्के घर के बाहर खड़े हीरा राम सोपाजी कहते हैं- “मर जाएंगे, मिट जाएंगे, गाड़ दो हमें, पर छोड़ेंगे नहीं।”

*
चार अगस्त, 2023 को केन्द्र सरकार के अंतर्गत आने वाले राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए) ने राजस्थान के कुंभलगढ़ में 59वें बाघ अभयारण्य के निर्माण के प्रस्ताव को मंजूरी दे दी। इसके बमुश्किल दो महीने बाद, 7 अक्टूबर, 2023 को राजस्थान सरकार ने कुंभलगढ़ से कुछ ही दूरी पर अमरख महादेव तेंदुआ संरक्षण रिजर्व की घोषणा कर दी।

राष्ट्रीय स्तर पर भारत बाघ को लेकर खासा जुनूनी है- 1972 में बाघ ने शेर को पीछे छोड़ते हुए भारत के राष्ट्रीय पशु का स्थान हासिल किया था। प्रोजेक्ट टाइगर के 53 वर्षों में भारत ने 58 बाघ अभयारण्य स्थापित किए हैं- ये बाघों के लिए स्थापित ऐसे संरक्षित क्षेत्र हैं जहां मानव गतिविधियों पर कड़े प्रतिबंध हैं। जानवरों की किसी अन्य प्रजाति को, यहां तक कि भारतीय ग्रे वुल्फ़ भेड़िए और ग्रेट इंडियन बस्टर्ड (गोडावण) जैसी विलुप्तप्राय प्रजातियों को भी इस तरह का

ध्यान नहीं मिला है।

भारतीय तेंदुआ (पैथेरा पार्डस फुस्का) वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की अनुसूची-I में सूचीबद्ध है और आईयूसीएन की रेड लिस्ट में इसे ‘लगभग संकटग्रस्त’ श्रेणी में रखा गया है। साल 2024 में केन्द्र सरकार ने तेंदुओं की संख्या के आंकड़े जारी करते हुए चेतावनी दी थी कि ये तेंदुए, “पूरे भारत में अपने आवासीय क्षेत्र में बढ़ते ख़तरों का सामना कर रहे हैं। आवास के नुक़सान, मानव-वन्यजीव टकराव और अवैध शिकार के बीच।” लेकिन यही सरकार अब तेंदुओं के आवास में बाघों को बसाने की दिशा में आगे बढ़ रही है। राजस्थान में पहले से ही पांच बाघ अभयारण्य हैं: रणथंभौर, सरिस्का, मुकुंदरा, धौलपुर और रामगढ़ विषधारी। भारत में सबसे कड़े संरक्षण वाले क्षेत्रों में शामिल बाघ अभयारण्य को वन अधिकारियों के लिए कहीं अधिक ऊंचा दर्जा हासिल है और यहां वित्तीय आवंटन भी अधिक होता है, क्योंकि इसका प्रबंधन केन्द्र सरकार करती है। पारी ने जब वरिष्ठ वन अधिकारियों से बात की तो जवाब मिला- “वे ऊपर से आए आदेशों का पालन कर रहे हैं” और रिकॉर्ड पर आगे कुछ कहने से इंकार कर दिया।

*
स्थानीय लोग और उनके निर्वाचित प्रतिनिधि इस परियोजना को रद्द करवाने के लिए अपने संवैधानिक अधिकारों और सभी उपलब्ध क़ानूनी उपायों का इस्तेमाल कर रहे हैं। मेघवाल एक के बाद एक बातें गिनाते हुए बताते हैं कि कुंभलगढ़ में बाघ लाने के केन्द्र सरकार के फ़ैसले का वे कितनी मजबूती से विरोध कर रहे हैं:

“हमने एसडीओ से मुलाकात की है और पाली में ज़िला आयुक्त से बात करने के लिए एक प्रतिनिधि-मंडल भी भेजा था। हम पुष्पेन्द्र सिंह से भी मिले हैं, जिन्हें हमने विधायक चुना था। हम करीब 500 लोगों ने धरना निकाला था और सादरी [वन्] रेंज कार्यालय तक गए थे। यह बात 10 साल पहले की है।”

इस प्रतिरोध की अगुवाई राजसमंद की मौजूदा सांसद महिमा कुमारी मेवाड़ (56) कर रही हैं। उनकी पार्टी भाजपा केन्द्र और राज्य- दोनों जगह सत्ता में है। इसके बावजूद उन्होंने केन्द्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्री भूपेन्द्र यादव को पत्र लिखे हैं और उनसे दो बार मुलाकात भी की है। इन पत्रों और मुलाकातों में उन्होंने इस योजना को रद्द करने के पक्ष में परिस्थितिकीय और सामाजिक-सांस्कृतिक कारण गिनाए हैं।

कहा जाता है कि कुंभलगढ़ 15वीं शताब्दी में बने क़िले ने सदियों तक हुए हमलों को सफलतापूर्वक विफल किया है। यहां बाघ अभयारण्य बनाए जाने का विरोध करने वालों के लिए यह क़िला शायद सबसे उपयुक्त प्रतीक हो सकता है। इस साल 9 जुलाई, 2026 को यादव की अध्यक्षता में हुई राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए) की बैठक में कुंभलगढ़ का उल्लेख नहीं किया गया। यह छोटी-सी बात है, लेकिन स्थानीय लोग इसे अपनी जीत मान रहे हैं। ■

समांश: ruralindiaonline.org



नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर मुंबई के हृदयस्थल में, बीकेसी से सटे, एयरपोर्ट के पास



इन सबके लिए सर्वोत्तम:

- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- ट्याक्खान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है

-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे

-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे



बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258

या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051